भारतीय राजनीति

भारतीय राजनीति

दर्शन वडोदरिया

SURABHI PUBLICATIONS
ANAND-388001

Published by

Surabhi Publications

516, Virani Chambers

Opp. Taskent Petrol Pump, Sardar Gunj Anand-388001

e-mail: ibd2692@gmail.com

M.: 09429252719, 09426583589

3298 US HIGHWAY

259 NORTH KILGORE TX 75662

भारतीय राजनीति

© Reserved 2011

ISBN: 978-93-85099-02-1

All rights reserved. No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system, or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical or photocopying or otherwise, without prior permission in writing from the publishers/author.

Printed in India

Published by: Abhishek Dahulia for Surabhi Publications Anand & Typeset by Lucky Graphic Delhi & Printed at Amba Offset, Delhi-93.

भूमिका

भारत की राजनीति देश के संविधान के ढांचे के भीतर काम करती है । भारत एक संसदीय धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक गणराज्य है जिसमें भारत का राष्ट्रपति राज्य का प्रमुख और भारत का पहला नागरिक होता है और भारत का प्रधानमंत्री सरकार का मुखिया होता है ।

यह सरकार के संघीय ढांचे पर आधारित है, हालांकि इस शब्द का इस्तेमाल संविधान में नहीं किया गया है। भारत दोहरी राजनीति प्रणाली का पालन करता है, यानी प्रकृति में संघीय, जिसमें केंद्र में केंद्रीय प्राधिकरण और परिधि पर राज्य शामिल हैं । संविधान केंद्र और राज्य दोनों सरकारों की संगठनात्मक शक्तियों और सीमाओं को परिभाषित करता है; यह अच्छी तरह से मान्यता प्राप्त है, तरल है (संविधान की प्रस्तावना कठोर है और संविधान में आगे संशोधन करने के लिए निर्देशित करती है) और सर्वोच्च माना जाता है, यानी राष्ट्र के कानूनों को इसके अनुरूप होना चाहिए। संविधान के अनुसार भारत को आधिकारिक तौर पर एक धर्मनिरपेक्ष और समाजवादी राज्य घोषित किया गया है।

अनुक्रम

1	भारतीय राजनीति का परिचय	9
2	भारत का राजनीतिक इतिहास	12
3	भारत का संविधान	19
4	मौलिक अधिकार	28
5	मौलिक कर्तव्य	42
6	भारत में राष्ट्रपति और उनकी शक्तियां	52
7	भारत के प्रधानमंत्री तथा उसकी प्रमुख शक्तियां	61
8	संसद	87
9	केंद्रीय मंत्रिपरिषद	108
10	केंद्रीय सचिवालय	119
11	भारतीय कानून एवं न्यायपालिका	132
12	भारत में चुनावी राजनीति	143

1

भारतीय राजनीति का परिचय

राजनीति का परिचय

राजनीति दो शब्दों का एक समूह है राज+नीति (राज मतलब शासन और नीति मतलब उचित समय और उचित स्थान पर उचित कार्य करने की कला) अर्थात् नीति विशेष के द्वारा शासन करना या विशेष उद्देश्य को प्राप्त करना राजनीति कहलाती है। दूसरे शब्दों में कहें तो जनता के सामाजिक और आर्थिक स्तर (सार्वजनिक जीवन स्तर)को ऊँचा करना राजनीति है । नागरिक स्तर पर या व्यक्तिगत स्तर पर कोई विशेष प्रकार का सिद्धान्त एवं व्यवहार राजनीति (पॉलिटिक्स) कहलाती है। अधिक संकीर्ण रूप से कहें तो शासन में पद प्राप्त करना तथा सरकारी पद का उपयोग करना राजनीति है।

राजनीति में बहुत से रास्ते अपनाये जाते हैं जैसे– राजनीतिक विचारों को आगे बढ़ाना,विधि बनाना, विरोधियों के विरुद्ध युद्ध आदि शक्तियों का प्रयोग करना। राजनीति बहुत से स्तरों पर हो सकती है– गाँव की परम्परागत राजनीति से लेकर, स्थानीय सरकार, सम्प्रभुत्वपूर्ण राज्य या अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर।

राजनीति का इतिहास अति प्राचीन है जिसका विवरण विश्व के सबसे प्राचीन सनातन धर्म ग्रन्थों में देखनें को मिलता है । राजनीति कि शुरुआत रामायण काल से भी अति प्राचीन है। महाभारत महाकाव्य में इसका सर्वाधिक विवरण देखने को मिलता है । चाहे वह चक्रव्यूह रचना हो या चौसर खेल में पाण्डवों को हराने कि राजनीति ।अरस्तु को राजनीति का जनक कहा जाता है।

आम तौर पर देखा गया है कि लोग राजनीति के विषय में नकारात्मक विचार रखते हैं , यह दुर्भाग्यपूर्ण है ,हमें समझने की आवश्यकता है कि राजनीति किसी भी समाज का अविभाज्य अंग है ।महात्मा गांधी ने एक बार टिप्पणी की थी कि राजनीति ने हमें सांप की कुंडली की तरह जकड़ रखा है और इससे जूझने के सिवाय कोई अन्य रास्ता नहीं है ।राजनीतिक संगठन और सामूहिक निर्णय के किसी ढांचे के बिना कोई भी समाज जीवित नहीं रह सकता ।

भारत की राजनीति

भारत की राजनीति देश के संविधान के ढांचे के भीतर काम करती है । भारत एक संसदीय धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक गणराज्य है जिसमें भारत का राष्ट्रपति राज्य का प्रमुख और भारत का पहला नागरिक होता है और भारत का प्रधानमंत्री सरकार का मुखिया होता है । यह सरकार के संघीय ढांचे पर आधारित है, हालांकि इस शब्द का इस्तेमाल संविधान में नहीं किया गया है। भारत दोहरी राजनीति प्रणाली का पालन करता है, यानी प्रकृति में संघीय, जिसमें केंद्र में केंद्रीय प्राधिकरण और परिधि पर राज्य शामिल हैं । संविधान केंद्र और राज्य दोनों सरकारों की संगठनात्मक शक्तियों और सीमाओं को परिभाषित करता है; यह अच्छी तरह से मान्यता प्राप्त है, तरल है (संविधान की प्रस्तावना कठोर है और संविधान में आगे संशोधन करने के लिए निर्देशित करती है) और सर्वोच्च माना जाता है, यानी राष्ट्र के कानूनों को इसके अनुरूप होना चाहिए। संविधान के अनुसार भारत को आधिकारिक तौर पर एक धर्मनिरपेक्ष और समाजवादी राज्य घोषित किया गया है।

एक द्विसदनीय विधायिका का प्रावधान है जिसमें एक उच्च सदन , राज्य सभा (राज्यों की परिषद) शामिल है, जो भारतीय संघ के राज्यों का प्रतिनिधित्व करती है, और एक निचला सदन , लोकसभा (लोगों का सदन), जो पूरे भारत के लोगों का प्रतिनिधित्व करता है। संविधान एक स्वतंत्र न्यायपालिका का प्रावधान करता है , जिसका नेतृत्व सर्वोच्च न्यायालय करता है । न्यायालय का कार्य संविधान की रक्षा करना, केंद्र सरकार और राज्यों के बीच विवादों का निपटारा करना, अंतर–राज्यीय विवादों का निपटारा करना, संविधान के विरुद्ध जाने वाले किसी भी केंद्रीय या राज्य कानून को निरस्त करना और नागरिकों के मौलिक अधिकारों की रक्षा करना, उल्लंघन के मामलों में उनके प्रवर्तन के लिए रिट जारी करना है।

लोकसभा में 543 सदस्य हैं, जो 543 एकल सदस्यीय जिले से बहुलता मतदान (फर्स्ट पास्ट द पोस्ट) प्रणाली का उपयोग करके चुने जाते हैं । राज्यसभा में 245 सदस्य हैं, जिनमें से 233 राज्य विधानसभाओं के सदस्यों द्वारा एकल संक्रमणीय वोट द्वारा अप्रत्यक्ष चुनावों के माध्यम से चुने जाते हैं; 12 अन्य सदस्य भारत के राष्ट्रपति द्वारा चुने/मनोनीत किए जाते हैं। सरकारें हर पाँच साल (जब तक अन्यथा निर्दिष्ट न हों) में आयोजित चुनावों के माध्यम से उन दलों द्वारा बनाई जाती हैं, जिन्हें अपने–अपने निचले सदनों (केंद्र सरकार में लोकसभा और राज्यों में विधानसभा) में सदस्यों का बहुमत प्राप्त होता है। भारत में पहला आम चुनाव 1951 में हुआ था, जिसे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने जीता था, यह एक राजनीतिक पार्टी थी जो 1977 तक के बाद के चुनावों पर हावी रही , जब स्वतंत्र भारत में पहली बार गैर–कांग्रेसी सरकार बनी । भारत के चुनाव आयोग द्वारा 19 अप्रैल 2024 से 1 जून 2024 तक सात चरणों में 18 वीं लोकसभा के चुनाव आयोजित किए गए। नतीजों ने एनडीए (राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन) को अगली सरकार बनाने के लिए प्रेरित किया।

हाल के दशकों में, भारतीय राजनीति एक वंशवादी मामला बन गई है। इसके संभावित कारण पार्टी की स्थिरता, पार्टी संगठनों की अनुपस्थिति, स्वतंत्र नागरिक समाज संघ जो पार्टियों के लिए समर्थन जुटाते हैं और चुनावों का केंद्रीकृत वित्तपोषण हो सकते हैं। वी–डेम डेमोक्रेसी इंडेक्स के अनुसार 2023 में भारत एशिया में 19वां सबसे अधिक चुनावी लोकतांत्रिक देश था।

2

भारत का राजनीतिक इतिहास

राज करने अथवा राज चलाने सम्बन्धी नीति को राजनीति कहा जाता है। स्पष्ट है कि राज करने या चलाने जैसी– अति संवेदनशील एवं गम्भीर जिम्मेदारी के लिए इस पेशे में शामिल व्यक्ति को अत्यधिक योग्य, दक्ष, ईमानदार तथा कुशल नेतृत्व प्रदान कर पाने की क्षमता रखने वाला व्यक्ति होना चाहिए। राजा भरत, भगवान राम, भगवान कृष्ण, सम्राट अशोक, चन्द्रगुप्त, चाणक्य जैसे राजनीति में सिद्ध पुरूषों से लेकर सुभाष चन्द्र बोस, महात्मा गांधी, पंडित नेहरू, सरदार पटेल, लाल बहादुर शास्त्री, इंदिरा गांधी, अटल बिहारी वाजपेयी सरीखे देश के सुप्रसिद्ध राजनीतिक महापंडितों तक भारतीय राजनीति का इतिहास ऐसे तमाम दिग्गजों से भरा पड़ा है, जिन पर न सिर्फ जनता, बल्कि देश की राजनीतिक व्यवस्था भी गर्व करती है।

त्रेतायुग में अर्थात भगवान राम के काल के हजारों वर्ष पूर्व प्रथम मनु स्वायंभुव मनु के पौत्र और प्रियव्रत के पुत्र ने इस भारतवर्ष को बसाया था। भारत से पूर्व भारत का नाम नाभिराज के नाम पर अजनाभवर्ष और उससे पूर्व हिमवर्ष था। वायु पुराण के अनुसार महाराज प्रियव्रत का अपना कोई पुत्र नहीं था तो उन्होंने अपनी पुत्री के पुत्र अग्नीन्ध्र को गोद ले लिया था जिसका लड़का नाभि था। नाभि की एक पत्नी में देवी से जो पुत्र पैदा हुआ उसका नाम ऋषभ था। इसी ऋषभ के पुत्र भरत थे तथा इन्हीं भरत के नाम पर इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा।

राजा प्रियव्रत ने अपनी पुत्री के 10 पुत्रों में से सात को संपूर्ण धरती के सात

महाद्वीपों का राजा बना दिया था और अग्नीन्ध्र को जम्बू द्वीप का राजा बना दिया था। इस प्रकार राजा भरत ने जो क्षेत्र अपने पुत्र सुमति को दिया वह भारतवर्ष कहलाया। भारतवर्ष अर्थात भरत राजा का क्षेत्र। भरत एक प्रतापी राजा एवं महान देशभक्त थे।

श्रीमद्‌भागवत के पञ्चम स्कंध एवं जैन ग्रंथों में उनके जीवन एवं अन्य जन्मों का वर्णन आता है। महाभारत के अनुसार भरत का साम्राज्य सम्पूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप में व्याप्त था जिसमें वर्तमान भारत, पाकिस्तान, अफगानिस्तान, उज्बेकिस्तान, ताजिकिस्तान, किर्गिज्तान, तुर्कमेनिस्तान तथा फारस आदि क्षेत्र शामिल थे। इस भारतवर्ष में पहले देव, असुर, गंधर्व, किन्नर, यक्ष, मानव, नाग आदि जातियां निवास करती थीं। इसमें कुरु, पांचाल, पुण्ड्र, कलिंग, मगध, दक्षिणात्य, अपरांतदेशवासी, सौराष्ट्रगण, तहा शूर, आभीर एवं अर्बुदगण, कारूष, मालव, पारियात्र, सौवीर, संधव, हूण, शाल्व, कोशल, मद्र, आराम, अम्बष्ठ और पारसी गण रहते थे।

भारत के पूर्वी भाग में किरात (चीनी) और पश्चिमी भाग में यवन (अरबी) बसे हुए थे। बाद में भारत में कृष्ण के काल में अंग, अवंति, अश्मक, कंबोज, काशी, कुरु, कोशल, गांधार, चेदि, पंचाल, मगध, मत्स्य, मल्ल, वज्जि, वत्स और शूरसेन जनपद बने। हर काल में ये जनपद बदलते रहे, लेकिन जिस व्यक्ति ने इन संपूर्ण जनपदों पर राज किया वही चक्रवर्ती सम्राट कहलाया। मूल रूप से प्राचीन भारत में अयोध या कुल, यदु कुल, पौरव कुल और कुरुवंश का शासन रहा लेकिन इनके अलावा दिवोदास (काशी), दुर्दम (हैहय), कैकय (आनव), गाधी (कान्यकुब्ज), अर्जुन (हैहय), विश्वामित्र (कान्यकुब्ज), तालजङ्घ (हैहय), प्रचेतस् (द्रुह्यु), सुचेतस् (द्रुह्यु), सुदेव (काशी), दिवोदास द्वितीय और बलि (आनव) का भी राज्य शासन रहा। मालूम हो कि इन सब राज्य और राजाओं से पहले यहां देव और दैत्य के राजा होते थे, जिसमें इंद्र और राजा बलि का नाम प्रसिद्ध है। तिब्बत और उसके आसपास के क्षेत्र को इंद्रलोक कहते थे, जहां नंदन कानन वन और खंडववन था। राजा बलि ने अरब को अपना निवास स्थान बनाया था।

प्रथम राजा भरत के बाद और भी कई भरत यहां पैदा हुए। सातवें मनु वैवस्वत कुल में एक भरत हुए जिनके पिता का नाम ध्रुवसंधि था और जिसने पुत्र का नाम असित और असित के पुत्र का नाम सगर था। सगर अयोध्या के बहुत प्रतापी राजा थे। इन्हीं सगर के कुल में भगीरथ हुए। भगीरथ के कुल में ही ययाति हुए (ये चंद्रवशी ययाति से अलग थे)। ययाति के कुल में राजा रामचंद्र हुए और कहते हैं कि राम के पुत्र लव और कुश ने संपूर्ण धरती पर शासन किया।

महाभारत काल में एक तीसरे भरत भी हुए। पुरुवंश के राजा दुष्यंत और शकुंतला के पुत्र भरत की गणना महाभारत में वर्णित सोलह सर्वश्रेष्ठ राजाओं में होती है।

कालिदास कृत महान संस्कृत ग्रंथ अभिज्ञान शाकुंतलम के एक वृत्तांत के अनुसार राजा दुष्यंत और उनकी पत्नी शकुंतला के पुत्र भरत के नाम से भारतवर्ष का नामकरण हुआ। मरुद्गणों की कृपा से ही भरत को भारद्वाज नामक पुत्र मिला। भारद्वाज महान ऋषि थे। चक्रवर्ती राजा भरत के चरित्र का उल्लेख महाभारत के आदिपर्व में भी है।

अयोध्या के राजा हरिशचंद्र बहुत ही सत्यवादी और धर्मपरायण राजा थे। वे अपने सत्य धर्म का पालन करने और वचनों को निभाने के लिए राजपाट छोड़कर पत्नी और बच्चे के साथ जंगल चले गए और वहां भी उन्होंने विषम परिस्थितियों में भी धर्म का पालन किया।

ऋषि विश्वामित्र द्वारा राजा हरिशचंद्र के धर्म की परीक्षा लेने के लिए उनसे दान में उनका संपूर्ण राज्य मांग लिया गया था। राजा हरिशचंद्र भी अपने वचनों के पालन के लिए विश्वामित्र को संपूर्ण राज्य सौंपकर जंगल चले गए।

दान में राज्य मांगने के बाद भी विश्वामित्र ने उनका पीछा नहीं छोड़ा और उनसे दक्षिणा भी मांगने लगे। इस पर हरिशचंद्र ने अपनी पत्नी, बच्चों सहित स्वयं को बेचने का निश्चय किया और वे काशी चले गए, जहां पत्नी व बच्चों को एक ब्राह्मण को बेचा व स्वयं को चांडाल के यहां बेचकर मुनि की दक्षिणा पूरी की। कहते हैं कि हरिशचंद्र श्मशान में कर वसूली का काम करने लगे। इस बीच उनके साथ एक अजीब सी घटना घटी।

हरिश्चंद्र के पुत्र रोहित की सर्पदंश से मौत हो जाती है। पत्नी श्मशान पहुंचती है जहां कर चुकाने के लिए उसके पास एक फूटी कौड़ी भी नहीं रहती। हरिशचंद्र अपने धर्म पालन करते हुए कर की मांग करते हैं। इस विषम परिस्थिति में भी राजा का धर्म–पथ नहीं डगमगाया। विश्वामित्र अपनी अंतिम चाल चलते हुए हरिशचंद्र की पत्नी को डायन का आरोप लगाकर उसे मरवाने के लिए हरिशचंद्र को काम सौंपते हैं। हरिशचंद्र आंखों पर पट्टी बांधकर जैसे ही वार करते हैं, स्वयं सत्यदेव प्रकट होकर उसे बचाते हैं। वहीं विश्वामित्र भी हरिशचंद्र के सत्य पालन धर्म से प्रसन्न होकर सारा साम्राज्य वापस कर देते हैं।

वन से लौटने के बाद जब भगवान राम ने अयोध्या का शासन संभाला तो

उन्होंने कई वर्षों तक भारत पर शासन किया और भारत को एकसूत्र में बांधे रखा। राम के काल में रावण, बाली, जनक, अहिरावण और कार्तवीर्य अर्जुन नाम के महान शासक थे। कार्तवीर्य अर्जुन या सहस्रार्जुन यदुवंश का एक प्राचीन राजा था।

वह बड़ा वीर और प्रतापी था। उसने लंका के राजा रावण जैसे प्रसिद्ध योद्धा से भी संघर्ष किया था। कार्तवीर्य अर्जुन के राज्य का विस्तार नर्मदा नदी से हिमालय तक था जिसमें यमुना तट का प्रदेश भी सम्मिलित था। कार्तवीर्य अर्जुन के वंशज कालांतर में है वंशी कहलाए जिनकी राजधानी माहिष्मती (महेश्वर) थी। इन हैहयों से ही परशुराम का 21 बार युद्ध हुआ था। सम्राट भरत के समय में ही एक राजा हस्ति भी हुए जिन्होंने अपनी राजधानी हस्तिनापुर बनाई। राजा हस्ति के पुत्र अजमीढ़ को पंचाल का राजा कहा गया है। राजा अजमीढ़ के वंशज राजा संवरण जब हस्तिनापुर के राजा थे तो पंचाल में उनके समकालीन राजा सुदास का शासन था।

राजा सुदास का संवरण से युद्ध हुआ जिसे कुछ विद्वान ऋग्वेद में वर्णित दाशराज्य युद्ध से जानते हैं। राजा सुदास के समय पंचाल राज्य का विस्तार हुआ।

राजा सुदास के बाद संवरण के पुत्र कुरु ने शक्ति बढ़ाकर पंचाल राज्य को अपने अधीन कर लिया तभी यह राज्य संयुक्त रूप से कुरु–पंचाल कहलाया, परंतु कुछ समय बाद ही पंचाल पुनः स्वतंत्र हो गया।

राजा कुरु के नाम पर ही सरस्वती नदी के निकट का राज्य कुरुक्षेत्र कहा गया। माना जाता है कि पंचाल राजा सुदास के समय में भीम सात्वत यादव का बेटा अंधक भी राजा था। इस अंधक के बारे में पता चलता है कि शूरसेन राज्य के समकालीन राज्य का स्वामी था। दसराज्य युद्ध में यह भी सुदास से हार गया था।

वैदिक साहित्य में उल्लिखित एक प्रसिद्ध चंद्रवंशी राजा था। कुरु के पिता का नाम संवरण तथा माता का नाम तपती था। शुभांगी तथा वाहिनी नामक इनकी दो स्त्रियां थीं।

वाहिनी के पांच पुत्र हुए जिनमें कनिष्ठ का नाम जन्मेजय था जिसके वंशज धृतराष्ट्र और पांडु हुए। सामान्यतः धृतराष्ट्र की संतान को ही कौरव संज्ञा दी जाती है, पर कुरु के वंशज कौरव–पांडव दोनों ही थे। पपंचसूदनी नामक ग्रंथ में वर्णित अनुश्रुति के अनुसार, इलावंशीय कौरव, मूल रूप से हिमालय के उत्तर में स्थित प्रदेश (या उत्तरकुरु) के रहने वाले थे। कालांतर में उनके भारत में आकर बस जाने के कारण उनका नया निवास स्थान भी कुरु देश ही कहलाने लगा।

पुरुवंश के राजा दुष्यंत और शकुंतला के पुत्र भरत की गणना महाभारत में वर्णित सोलह सर्वश्रेष्ठ राजाओं में होती है। राजा भरत को सर्वदमन भी कहा जाता था, क्योंकि उन्होंने बचपन में ही बड़े–बड़े राक्षसों, दानवों और सिंहों का दमन किया था। सम्राट भरत का शासन संपूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप पर था। महाभारत के अनुसार भरत ने यमुना, सरस्वती और गंगा के तट पर बड़े–बड़े यज्ञों का अनुष्ठान किया तथा महर्षि भारद्वाज की कृपा से भूमन्यु नामक पुत्र प्राप्त किया।

भरत के देहावसान के बाद उसने अपने पुत्र वितथ को राज्य का भार सौंप दिया और स्वयं वन में चला गया। श्रीमद् भागवत के अनुसार भरत का विवाह विदर्भराज की तीन कन्याओं से हुआ था जिनसे उन्हें तीन पुत्रों की प्राप्ति हुई। तीनों पुत्रों से कोई वंश चलता नहीं देख भरत ने मरूत्स्तोम यज्ञ किया। मरूद्गणों ने भरत को भारद्वाज नामक पुत्र दिया। भारद्वाज का वंश चला।

इन्हीं भरत के कुल में शांतनु पैदा हुए। शांतनु की एक पत्नी गंगा थी जिनके पुत्र भीष्म थे और शांतनु की दूसरी पत्नी सत्यवती के दो पुत्र चित्रांगद और विचित्रवीर्य हुए। भीष्म ने भीष्म प्रतिज्ञा ली थी इसलिए उनका वंश नहीं चला। चित्रांगद गंधर्वों से युद्ध करते हुए मारा गया। विचित्रवीर्य की दो पत्नियां अम्बिका और अम्बालिका थीं। विचित्रवीर्य कामी और सुरापेयी था।

उसे राजयक्ष्मा हो गया और वह असमय में ही मृत्यु को प्राप्त हुआ। सत्यवती और भीष्म को कुल और वंश नष्ट होने की जब चिंता होने लगी तब सत्यवती ने राजमाता होने के कारण व्यास द्वैपायन को बुलवाया, जो पुत्र दे सके।

सत्यवती की कुमारी अवस्था में ही व्यास द्वैपायन का जन्म हुआ था। वह बेहद कुरूप था। कहते हैं कि समागम के समय व्यास द्वैपायन की कुरूपता को देखकर अम्बिको ने नेत्र मूंद लिए। अतः उसका पुत्र धृतराष्ट्र जन्म से ही अंधा पैदा हुआ। अम्बालिका व्यास को देखकर पीतवर्णा हो गई, इससे उसका पुत्र पाण्डु पीला हुआ। सत्यवती ने एक और पुत्र की कामना से अम्बिका को व्यास के पास भेजा, लेकिन उसने अपनी दासी को भेज दिया। दासी से विदुर का जन्म हुआ। इस तरह देखा जाए तो भरतवंश की जगह बाद में व्यास द्वैपायन का वंश चला।

पांडव पुत्र युधिष्ठिर को धर्मराज भी कहा जाता है। इनका जन्म धर्मराज के संयोग से कुंती के गर्भ द्वारा हुआ था। महाभारत युद्ध के बाद युधिष्ठिर ने ही भारत पर राज किया था। 2964 ई. पूर्व में युधिष्ठिर का राज्यारोहण हुआ था। युधिष्ठिर भाला चलाने में निपुण थे। वे कभी झूठ नहीं बोलते थे। उनके पिता ने यक्ष बनकर

सरोवर पर उनकी परीक्षा भी ली थी।

महाभारत युद्ध में धर्मराज युधिष्ठिर सात अक्षौहिणी सेना के स्वामी होकर कौरवों के साथ युद्ध करने को तैयार हुए थे, जबकि परम क्रोधी दुर्योधन ग्यारह अक्षौहिणी सेना का स्वामी था। महाभारत युद्ध के बाद युधिष्ठिर को राज्य, धन, वैभव से वैराग्य हो गया था। वे वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करना चाहते थे लेकिन सभी भाइयों तथा द्रौपदी ने उन्हें तरह–तरह से समझाकर क्षत्रीय धर्म का पालन करने के लिए प्रेरित किया। उनके शासनकाल में संपूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप पर शांति और खुशहाली रही।

युधिष्ठिर सहित पांचों पांडव अर्जुन पुत्र अभिमन्यु के पुत्र महापराक्रमी परीक्षित को राज्य देकर महाप्रयाण के लिए देवभूमि उत्तराखंड की ओर चले गए और वहां जाकर पुण्यलोक को प्राप्त हुए। परीक्षित के बाद उनके पुत्र जन्मेजय ने राज्य संभाला। महाभारत में जन्मेजय के छह और भाई बताए गए हैं। ये भाई हैं कक्षसेन, उग्रसेन, चित्रसेन, इन्द्रसेन, सुषेण तथा नख्यसेन।

इन्द्रप्रस्थ, अयोध्या, हस्तिनापुर, मथुरा के प्रभाव का ह्रास होने पर भारत 16 जनपदों में बंट गया। इसमें जो जनपद शक्तिशाली होता वहीं अन्य जनपदों को अपने तरीके से संचालित करता था।

धीरे–धीरे पाटलिपुत्र, तक्षशिला, वैशाली, गांधार और विजयनगर जैसे साम्राज्यों का उदय हुआ। माना जाता है कि महाभारत युद्ध के बाद 17 राजाओं ने राज किया। कुछ इतिहाकारों के अनुसार जन्मेजय की 29वीं पीढ़ी में राजा उदयन हुए। मगध (पाटलिपुत्र) पर वृहद्रथ के वीर पराक्रमी पुत्र और कृष्ण के दुश्मनों में से एक जरासंध का शासन था जिसके यवनों से घनिष्ट संबंध थे। जरासंध के इतिहास के अंतिम शासक निपुंजय की हत्या उनके मंत्री सुनिक ने की और उसका पुत्र प्रद्योत मगध के सिंहासन पर काबिज हुआ था।

प्रद्योत वंश के 5 शासकों के अंत के 138 वर्ष बाद ईसा से 642 वर्ष पूर्व शिशुनाग मगध के राज सिंहासन पर काबिज हुआ। उसके बाद महापद्म ने मगध ा की बागडोर संभाली और नंद वंश की स्थापना की। महापद्म, जिन्हें महापद्मपति या उग्रसेन भी कहा जाता है, समाज के शूद्र वर्ग के थे।

महापद्म ने अपने पूर्ववर्ती शिशुनाग राजाओं से मगध की बागडोर और सुव्यवस्थित विस्तार की नीति भी जानी। पुराणों में उन्हें सभी क्षत्रियों का संहारक बतलाया गया है। महापद्म ने उत्तरी, पूर्वी और मध्यभारत स्थित इक्ष्वाकु, पांचाल,

काशी, है, कलिंग, अश्मक, कौरव, मैथिल, शूरसेन और वितिहोत्र जैसे शासकों को हराया।

महापद्म के वंश की समाप्ति के बाद मगध पर नंद वंशों का राज कायम हुआ। पुराणों में नंद वंश का उल्लेख मिलता है, जिसमें सुकल्प (सहल्प, सुमाल्य) का जिक्र है, जबकि बौद्ध महाबोधिवंश में आठ नंद राजाओं के नामों का उल्लेख है। इस सूची में अंतिम शासक धनानंद का उल्लेख है।

यह धनानंद सिकंदर महान का शक्तिशाली समकालीन बताया गया है। मगध ा के राजनीतिक उत्थान की शुरुआत ईसा पूर्व 528 से शुरू हुई, जब बिम्बिसार ने सत्ता संभाली। बिम्बिसार के बाद अजातशत्रु ने बिम्बिसार के कार्यों को आगे बढ़ाया। गौतम बुद्ध के समय में मगध में बिंबिसार और तत्पश्चात उसके पुत्र अजातशत्रु का राज था।

अजातशत्रु ने विज्यों (वृज्जिसंघ) से युद्ध कर पाटलिग्राम में एक दुर्ग बनाया। बाद में अजातशत्रु के पुत्र उदयन ने गंगा और शोन के तट पर मगध की नई राजध ानी पाटलिपुत्र नामक नगर की स्थापना की।

पाटलिपुत्र के राजसिंहासन पर आरूढ़ हुए नंद वंश के प्रथम शासक महापद्म नंद ने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की और मगध साम्राज्य के अंतिम नंद ध ानानंद ने उत्तराधिकारी के रूप में सत्ता संभाली। इसी अंतिम धनानंद के शासन को उखाड़ फेंकने के लिए चाणक्य ने शपथ ली थी। हालांकि धनानंद का नाम कुछ और था लेकिन वह धनानंद नाम से ज्यादा प्रसिद्ध हुआ।

तमिल भाषा की एक कविता और कथासरित्सागर अनुसार नंद की 99 करोड़ स्वर्ण मुद्राओं का उल्लेख मिलता है। कहा जाता है कि उसने गंगा नदी की तली में एक चट्टान खुदवाकर उसमें अपना सारा खजाना गाड़ दिया था। पुनश्च महानंद के पुत्र महापद्म ने नंद–वंश की नींव डाली। इसके बाद सुमाल्य आदि आठ नंदों ने शासन किया।

महानंद के बाद नवनंदों ने राज्य किया। धनानंद नंद वंश का अंतिम राजा था। कुछ इतिहासकारों के अनुसार अर्जुन के समकालीन जरासंधा के पुत्र सहदेव से लेकर शिशुनाग वंश से पहले के जरासंध वंश के 22 राजा मगध के सिंहासन पर बैठ चुके हैं। उनके बाद 12 शिशुनाग वंश के बैठे जिनमें छठे और सातवें राजाओं के समकालीन उदयन थे।

3

भारत का संविधान

भारतीय संविधान देश के मौलिक कानून के रूप में हमारे मूल्यों, सिद्धांतों और शासन के ढांचे का प्रतीक है। यह भारत की सर्वोच्च विधि के रूप में भूमिका निभाता है, तथा राज्यों के कामकाज का भी मार्गदर्शन करता है। भारतीय संविधान के द्वारा नागरिकों के अधिकारों और जिम्मेदारियों को भी सुनिश्चित किया जाता है।

भारतीय संविधान अपने ऐतिहासिक संघर्षों, दार्शनिक आदर्शों और सामाजिक आकांक्षाओं की जड़ों के साथ लोकतंत्र, न्याय और समानता की ओर राष्ट्र की सामूहिक यात्रा को प्रदर्शित करता है। छम्ज ^ै का यह लेख भारतीय संविधान के अर्थ, संरचना, प्रमुख विशेषताओं, महत्त्व और अन्य पहलुओं को समझाने का प्रयास करता है।

संविधान का अर्थ

किसी राज्य का संविधान मूल सिद्धांतों या स्थापित परंपराओं का एक मौलिक समूह होता है जिसके आधार पर राज्य के द्वारा शासन का संचालन किया जाता है। यह सरकार की संस्थाओं के संगठन, शक्तियों और सीमाओं के साथ–साथ नागरिकों के अधिकारों एवं कर्तव्यों के मध्य एक संतुलन की तरह कार्य करता है। यह देश के सर्वोच्च कानून के रूप में भूमिका निभाता है, जो सरकार के कामकाज, व्यक्तिगत स्वतंत्रताओं की सुरक्षा एवं सामाजिक व्यवस्था के रखरखाव के लिए एक रूपरेखा प्रदान करता है।

भारत का संविधान

भारत का संविधान भारतीय गणराज्य का सर्वोच्च कानून है। यह देश की राजनीतिक व्यवस्था के लिए रूपरेखा तैयार करता है, सरकार की संस्थाओं की शक्तियों एवं उत्तरदायित्वों को परिभाषित करता है। संविधान के द्वारा मौलिक अधिकारों की रक्षा के साथ– साथ शासन के सिद्धांतों को भी रेखांकित किया जाता है।

संविधान में देश के प्रशासन का मार्गदर्शन करने वाले नियमों और विनियमों का एक समूह होता है।

भारतीय संविधान की संरचना

भारतीय संविधान विश्व के सबसे लंबे एवं विस्तृत लिखित संविधानों में से एक है। भारतीय संविधान की संरचना के विभिन्न घटकों को इस प्रकार देखा जा सकता है–

भागः– संविधान में "भाग" का तात्पर्य समान विषयों या प्रवृत्तियों से संबंधित अनुच्छेदों के समूह से है। भारतीय संविधान विभिन्न भागों में विभाजित है, प्रत्येक भाग देश के कानूनी, प्रशासनिक या सरकारी ढांचे के विशिष्ट पहलू से संबंधित है।

मूल रूप से, भारतीय संविधान में 22 भाग थे।

वर्तमान में, भारतीय संविधान में 25 भाग हैं।

अनुच्छेदः– "अनुच्छेद" संविधान के अंतर्गत एक विशिष्ट प्रावधान या खंड को संदर्भित करता है, जो देश के कानूनी और सरकारी ढांचे के विभिन्न पहलुओं का विवरण प्रदान करता है।

संविधान के प्रत्येक भाग में क्रमानुसार क्रमांकित कई अनुच्छेद होते हैं।

मूलतः भारतीय संविधान में 395 अनुच्छेद थे।

वर्तमान में, भारतीय संविधान में 448 अनुच्छेद हैं।

अनुसूचियाँः– "अनुसूची" संविधान से सम्बंधित एक सूची या तालिका को संदर्भित करती है जो संवैधानिक प्रावधानों से संबंधित कुछ अतिरिक्त जानकारी या दिशानिर्देशों का विवरण प्रदान करती है।

अनुसूचियाँ स्पष्टता और पूरक विवरण प्रदान करती हैं, जिससे संविधान

अधिक व्यापक और कार्यात्मक बन जाता है।

मूल रूप से, भारत के संविधान में 8 अनुसूचियाँ थीं। वर्तमान में, भारतीय संविधान में 12 अनुसूचियाँ हैं।

भारतीय संविधान का अधिनियमन और अंगीकरण

भारतीय संविधान का निर्माण 1946 में गठित एक संविधान सभा द्वारा किया गया था। संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ. राजेंद्र प्रसाद थे।

29 अगस्त 1947 को संविधान सभा में भारत के स्थायी संविधान का मसौदा तैयार करने के लिए एक प्रारुप समिति के गठन का प्रस्ताव रखा गया था। तदनुसार, डॉ. बी.आर. आंबेडकर की अध्यक्षता में प्रारुप समिति गठित की गई थी।

प्रारुप समिति के द्वारा संविधान को तैयार करने में 2 वर्ष, 11 महीने और 18 दिनों का कुल समय लगा।

कई विचार–विमर्श और कुछ संशोधनों के बाद, संविधान के प्रारुप को संविधान सभा द्वारा 26 नवंबर 1949 को पारित घोषित किया गया था। इसे भारत के संविधान की "अंगीकृत तिथि" के रूप में जाना जाता है।

संविधान के कुछ प्रावधान 26 नवंबर 1949 को लागू हो गए थे। हालाँकि, संविधान का अधिकांश भाग 26 जनवरी 1950 को लागू हुआ, जिससे भारत एक संप्रभु गणराज्य बन गया। इस तिथि को भारत के संविधान के "अधिनियमन तिथि" के रूप में जाना जाता है।

भारतीय संविधान की प्रमुख विशेषताएँ

सबसे विस्तृत लिखित संविधान

भारतीय संविधान विश्व के सभी लिखित संविधानों में सबसे विस्तृत है। भारतीय संविधान के व्यापक और विस्तृत दस्तावेज होने में योगदान देने वाले कई कारक हैं, जैसे देश की विशाल विविधता को एकता में समायोजित करने की आवश्यकता, केंद्र और राज्यों दोनों के लिए एक ही संविधान, संविधान सभा में कानूनी विशेषज्ञों और जानकारों की उपस्थिति आदि।

विभिन्न स्रोतों से प्रेरित

भारतीय संविधान के अधिकाँश प्रावधान 1935 के भारत शासन अधिनियम के

साथ–साथ विभिन्न अन्य देशों के संविधानों के प्रमुख प्रावधानों संशोधित करके भारतीय परिस्थितियों के अनुरुप अपनाया गया है।

कठोरता और लचीलेपन का मिश्रण

संविधानों को वर्गीकृत किया जाता है : कठोर (इसमें संशोधन के लिए एक विशेष बहुमत की आवश्यकता होती है) और लचीला (इसमें सामान्य बहुमत से संशोधन किया जा सकता है)।

भारतीय संविधान न तो कठोर है और न ही लचीला, बल्कि दोनों व्यवस्थाओं का एक मिश्रण है।

एकात्मकता के साथ संघीय प्रणाली

भारतीय संविधान सरकार की एक संघीय प्रणाली स्थापित करता है और इसमें संघ के सभी सामान्य लक्षण शामिल होते हैं।

हालाँकि, इसमें बड़ी संख्या में एकात्मक या गैर–संघीय विशेषताएँ भी शामिल हैं।

संसदीय शासन प्रणाली

भारतीय संविधान ने ब्रिटिश संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया है। संसदीय प्रणाली विधायी और कार्यकारी अंगों के मध्य सहयोग और समन्वय के सिद्धांत पर आधारित है।

संसदीय संप्रभुता और न्यायिक सर्वोच्चता का समन्वय

भारत में संसदीय संप्रभुता और न्यायिक सर्वोच्चता के मध्य समन्वय स्थापित किया गया हैं, अर्थात् भारतीय संविधान में विधि के निर्माण के लिए विधायिका के अधिकार और संवैधानिक सिद्धांतों के आलोक में इन विधियों की समीक्षा और व्याख्या करने के लिए न्यायपालिका की शक्ति के मध्य एक संतुलन बनाया गया है।

हालाँकि विधि बनाने का अंतिम अधिकार संसद को है, न्यायपालिका संविधान के संरक्षक के रूप में कार्य करती है तथा न्यायपालिका द्वारा यह सुनिश्चित किया जाता है कि संसदीय कार्य संवैधानिक मानदंडों के अनुसार हों तथा मौलिक अधिकारों की रक्षा के अनुरूप हों।

एकीकृत और स्वतंत्र न्यायपालिका

भारतीय संविधान के द्वारा देश में एक एकीकृत और स्वतंत्र न्यायिक प्रणाली स्थापित की गई है–

एक एकीकृत न्यायिक प्रणाली का अर्थ है कि न्यायालयों की एक एकल प्रणाली, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय, उच्च न्यायालय और अधीनस्थ न्यायालय शामिल हैं, जो केंद्र सरकार और राज्य सरकार द्वारा निर्मित कानूनों की संविधान की मूल अवसरंचना अनुरूप समीक्षा करती है।

एक स्वतंत्र न्यायिक प्रणाली का अर्थ है कि भारतीय न्यायपालिका स्वायत्त रूप से संचालित होती है, जो सरकार की कार्यकारी और विधायी शाखाओं के प्रभाव से स्वतंत्र है।

मौलिक अधिकार

भारतीय संविधान में सभी नागरिकों को छह मौलिक अधिकारों की गारंटी प्रदान की गईं है, जिससे देश में राजनीतिक लोकतंत्र के विचार को बढ़ावा मिलता है। वे कार्यपालिका और विधायिका के मनमाने कानूनों के लागू होने से प्रतिबंधित करते हैं।

राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांत

भारतीय संविधान में क्श्च्क्ष् के रूप में सिद्धांतों का एक समूह शामिल है, जो उन आदर्शों को दर्शाते है जिन्हें राज्य को नीतियाँ और कानून बनाते समय ध्यान में रखना चाहिए।

नीति–निर्देशक तत्त्व सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र के आदर्श को बढ़ावा देकर भारत में एक 'कल्याणकारी राज्य' स्थापित करने का प्रयास करते हैं।

मौलिक कर्तव्य

मौलिक कर्तव्य भारतीय संविधान में उल्लिखित नैतिक और नागरिक दायित्वों का एक समूह है।

ये कर्तव्य नागरिकों को एक मजबूत और सामंजस्यपूर्ण राष्ट्र बनाने की दिशा में योगदान करने के लिए एक मार्गदर्शक के रूप में कार्य करते हैं।

धर्मनिरपेक्ष राज्य

भारतीय संविधान किसी विशेष धर्म को भारतीय राज्य के आधिकारिक धर्म के

रूप में नहीं मानता है। इसके बजाय, यह अनिवार्य करता है कि राज्य को सभी धर्मों के साथ समान व्यवहार करना चाहिए तथा किसी विशेष धर्म के पक्ष में या उसके विरुद्ध भेदभाव करने से परहेज करना चाहिए।

सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार

भारतीय संविधान लोकसभा और राज्य विधानसभाओं के चुनावों के आधार के रूप में सार्वभौम वयस्क मताधिकार को अपनाता है।

प्रत्येक नागरिक जो 18 वर्ष से कम आयु का नहीं है,उसे जाति, नस्ल, धर्म, लिंग, साक्षरता, धन आदि के आधार पर किसी भी भेदभाव के बिना वोट देने का अधिकार है।

एकल नागरिकता

एकल नागरिकता भारत में एक संवैधानिक सिद्धांत है जिसके तहत सभी नागरिकों को, चाहे वे किसी भी राज्य में पैदा हुए हों या रहते हों, पूरे देश में नागरिकता के समान राजनीतिक और नागरिक अधिकार प्राप्त हैं, और उनके बीच कोई भेदभाव नहीं किया जाता है।

स्वतंत्र निकाय

भारतीय संविधान ने कुछ स्वतंत्र निकायों की स्थापना की है जिन्हें भारत में लोकतांत्रिक शासन प्रणाली के रक्षक के रूप में परिकल्पित किया गया है।

आपातकालीन प्रावधान

भारतीय संविधान में राष्ट्रपति को किसी भी असाधारण स्थिति से प्रभावी ढंग से निपटने के लिए आपातकालीन प्रावधान मौजूद हैं।

इन प्रावधानों को शामिल करने का तर्क देश की संप्रभुता, एकता, अखंडता और सुरक्षा, लोकतांत्रिक राजनीतिक प्रणाली और संविधान की रक्षा करना है।

त्रि–स्तरीय सरकार

त्रि–स्तरीय सरकार का अर्थ है सरकार की शक्तियों और दायित्वों को तीन स्तरों पर विभाजित किया जाता है दृ केंद्र सरकार, राज्य सरकारें और स्थानीय सरकारें (पंचायतें और नगरपालिकाएं)।

इस विकेंद्रीकृत प्रणाली के द्वारा क्षेत्रीय और स्थानीय मुद्दों को ध्यान में रखते

हुए योजनाओं का निर्माण किया जाता है, जो भागीदारीपूर्ण लोकतंत्र और जमीनी स्तर के विकास को बढ़ावा देती है।

सहकारी समितियाँ

2011 के 97वें संविधान संशोधन अधिनियम ने सहकारी समितियों को संवैधानिक दर्जा और संरक्षण प्रदान किया।

भारतीय संविधान का महत्त्व

- विधि का शासन :— संविधान विधि के शासन पर आधारित प्रशासन के लिए रुपरेखा स्थापित करता है, यह सुनिश्चित करता है कि कोई भी व्यक्ति, सरकारी अधिकारियों सहित, विधि से ऊपर नहीं है।
- अधिकारों की सुरक्षा :— यह नागरिकों को मौलिक अधिकारों की गारंटी देता है, जैसे वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, धर्म की स्वतंत्रता आदि की रक्षा करता है, साथ ही साथ इन अधिकारों के उल्लंघन होने पर कानूनी निवारण के लिए तंत्र भी प्रदान करता है।
- सरकार की संरचना :— संविधान सरकार की संरचना को चित्रित करता है, तथा सरकार के कार्यकारी, विधायी और न्यायिक शक्तियों और सीमाओं को परिभाषित करता है। शक्तियों के इस पृथक्करण के सिद्धांत से जांच और संतुलन को बढ़ावा मिलता है।
- लोकतांत्रिक सिद्धांत :— सार्वभौम वयस्क मताधिकार जैसे प्रावधानों के माध्यम से संविधान निःशुल्क और निष्पक्ष चुनावों के माध्यम से शासन में नागरिकों की भागीदारी सुनिश्चित करके लोकतांत्रिक सिद्धांतों को बनाए रखता है।
- स्थिरता और निरंतरता :— संविधान शासन में स्थिरता और निरंतरता प्रदान करता है, जो क्रमिक सरकारों को मार्गदर्शन देने और राजनीतिक व्यवस्था में अचानक परिवर्तन को रोकने के लिए एक ढांचे के रूप में कार्य करता है।
- राष्ट्रीय एकता :— भारतीय संविधान लोगों की विविधता को मान्यता प्रदान करता है तथा इस विविधता को ध्यान में रखते हुए विभिन्न प्रावधानों के माध्यम से राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा प्रोत्साहित किया

जाता है, साथ ही राष्ट्र के प्रति सामान्य नागरिकता और निष्ठा की भावना को भी बढ़ावा दिया जाता है।

- कानूनी ढांचा :– संविधान कानूनी आधार के रूप में कार्य करता है जिस पर सभी कानून और विनियम आधारित होते हैं, कानूनी प्रणाली में निरंतरता और सुसंगतता प्रदान करते हैं।
- अनुकूलनशीलता :– एक स्थिर ढांचा प्रदान करते हुए, संविधान बदलती सामाजिक आवश्यकताओं और मूल्यों को समायोजित करने के लिए आवश्यक संशोधनों की भी अनुमति प्रदान करता है, जो समय के साथ इसकी प्रासंगिकता सुनिश्चित करता है।

भारत के संविधान के स्रोत

- 1935 का भारत सरकार अधिनियम :– संघीय योजना, राज्यपाल का कार्यालय, न्यायपालिका, लोक सेवा आयोग, आपातकालीन प्रावधान और प्रशासनिक विवरण।
- ब्रिटिश संविधान :– सरकार की संसदीय प्रणाली, विधि का शासन, विधायी प्रक्रिया, एकल नागरिकता, कैबिनेट प्रणाली, विशेषाधिकार रिट, संसदीय विशेषाधिकार और द्विसदनीय प्रणाली।
- अमेरिकी संविधान :– मौलिक अधिकार, न्यायपालिका की स्वतंत्रता, न्यायिक समीक्षा, राष्ट्रपति पर महाभियोग, सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को हटाना और उपराष्ट्रपति का पद।
- आयरिश संविधान :– राज्य के नीति निदेशक तत्त्व, राज्यसभा के लिए सदस्यों का मनोनयन और राष्ट्रपति के चुनाव की विधि।
- कनाडाई संविधान :– एक मजबूत केंद्र के साथ संघ, केंद्र में अवशिष्ट शक्तियों का निहित होना, केंद्र द्वारा राज्य के राज्यपालों की नियुक्ति और सर्वोच्च न्यायालय का सलाहकार क्षेत्राधिकार।
- ऑस्ट्रेलियाई संविधान :– समवर्ती सूची, व्यापार, वाणिज्य और अंतर्व्यापार की स्वतंत्रता, और संसद के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक।
- जर्मनी का वाइमर संविधान :– आपातकाल के दौरान मौलिक अधिकारों का निलंबन।

- सोवियत संविधान :– प्रस्तावना में मौलिक कर्तव्य और न्याय का आदर्श (सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक)।
- फ्रांसीसी संविधान :– गणतंत्र और प्रस्तावना में स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुत्व के आदर्श।
- दक्षिण अफ्रीकी संविधान :– संविधान में संशोधन और राज्य सभा के सदस्यों के चुनाव की प्रक्रिया।
- जापानी संविधान :– विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया।

4

मौलिक अधिकार

मौलिक अधिकार अथवा मूल अधिकार, भारतीय संविधान की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषताओं में से एक, भारतीय लोकतंत्र की आधारशिला है। ये अधिकार न्याय, समानता और बंधुत्व को बढ़ावा देने एवं राज्य की मनमानी कार्रवाइयों के विरुद्ध व्यक्ति की सुरक्षा के लिए महत्त्वपूर्ण है।

मूल अधिकारों का अर्थ

मूल अधिकार ऐसे अधिकारों का समूह है जो किसी भी नागरिक के भौतिक (सामाजिक , आर्थिक तथा राजनितिक) और नैतिक विकास के लिए आवश्यक है इसके साथ ही मौलिक अधिकार किसी भी देश के संविधान द्वारा प्रत्येक नागरिक को दी गई आवश्यक स्वतंत्रता और अधिकारों के एक समूह को संदर्भित करते हैं।

ये अधिकार व्यक्तिगत स्वतंत्रता की आधारशिला को भी निर्मित करते हैं तथा नागरिकों की राज्यों के मनमाने कार्यों एवं नियमों से सुरक्षा प्रदान करते हैं। ये अधिकार बुनियादी मानवाधिकारों एवं स्वतंत्रताओं को सुनिश्चित करते हैं। एक राष्ट्र के भीतर लोकतंत्र, न्याय और समानता को बनाए रखने के लिए ये अधिकार संविधान का अभिन्न अंग है।

इन अधिकारों को मौलिक अधिकार माना जाता है, क्योंकि ये व्यक्तियों के सर्वांगीण विकास, गरिमा और कल्याण के लिए आवश्यक हैं। इनके असंख्य महत्त्व के कारण ही उन्हें भारत का मैग्ना कार्टा भी कहा गया है। ये अधिकार संविधान द्वारा गारंटीकृत और संरक्षित हैं, जो कि देश के मूलभूत शासन को

संदर्भित करते है।

भारतीय संविधान के तहत मौलिक अधिकार

भारतीय संविधान के भाग ш के अनुच्छेद 12 से 35 छह मूल अधिकारों का प्रावधान करते हैं। ये अधिकार निम्नलिखित है :

- समानता का अधिकार (अनुच्छेद 14–18)
- स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 19–22)
- शोषण के विरुद्ध अधिकार (अनुच्छेद 23–24)
- धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 25–28)
- सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकार (अनुच्छेद 29–30)
- संवैधानिक उपचारों का अधिकार (अनुच्छेद 32)

मूल रूप से, संविधान में सात मूल अधिकारों का प्रावधान था, जिसमें उपरोक्त छह अधिकार और संपत्ति का अधिकार शामिल था। हालाँकि, 1978 के 44वें संशोधन अधिनियम ने संपत्ति के अधिकार को मौलिक अधिकारों की सूची से हटा दिया। इसके बजाय, इसे संविधान के भाग ग्ш के अनुच्छेद 300–। के तहत एक कानूनी अधिकार बना दिया गया। इसलिए वर्तमान में केवल छह मौलिक अधिकार है।

मूल अधिकारों की प्रमुख विशेषताएं

भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों की विशेषताएं निम्नलिखित है–

- मौलिक अधिकारों में से कुछ अधिकार केवल नागरिकों के लिए उपलब्ध है, जबकि कुछ अन्य अधिकार सभी व्यक्तियों के लिए उपलब्ध है, चाहे वे नागरिक हों, विदेशी हों, या कानूनी व्यक्ति हों जैसे निगम, कंपनियां आदि।
- ये अधिकार पूर्ण नहीं बल्कि सीमित है, जिसका अर्थ है कि राज्य उन पर उचित प्रतिबंध लगा सकता है। ये व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक आवश्यकताओं के बीच संतुलन बनाते है।
- ये सभी अधिकार राज्य के मनमाने कार्यों के विरुद्ध उपलब्ध हैं।

हालाँकि, उनमें से कुछ निजी व्यक्तियों के कार्यों के विरुद्ध भी उपलब्ध है।

- इनमें से कुछ अधिकार प्रकृति में नकारात्मक हैं क्योंकि वे राज्य की शक्तियों पर सीमाएँ आरोपित करते हैं, जबकि अन्य सकारात्मक स्वरूप के होते हैं क्योंकि वे व्यक्तियों को कुछ विशेषाधिकार प्रदान करते हैं।
- ये अधिकार न्यायलयों द्वारा प्रवर्तनीय हैं, जिससे नागरिक अपने अधिकारों के उल्लंघन होने पर कानूनी उपाय के लिए सीधे न्यायालय जा सकते हैं। इससे यह सुनिश्चित किया जाता है कि व्यक्तियों की न्याय तक पहुँच हो और वे सरकार को अपने कार्यों के लिए जवाबदेह ठहरा सकें।
- ये अधिकार सर्वोच्च न्यायालय द्वारा संरक्षित और सुरक्षित हैं। इसलिए पीड़ित व्यक्ति उच्च न्यायालयों के निर्णय के विरुद्ध जरूरी अपील किये बिना सीधे सर्वोच्च न्यायालय जा सकते है।
- इन अधिकारों को स्थायी नहीं माना गया है, अर्थात् इन्हें संसद द्वारा संविधान संशोधन प्रक्रिया के माध्यम से संशोधित किया जा सकता है, बशर्ते कि ऐसे संशोधन संविधान की मूल संरचना का उल्लंघन न करें।
- राष्ट्रीय आपातकाल के दौरान राष्ट्रपति द्वारा कुछ अधिकारों को निलंबित किया जा सकता है, अपवादस्वरूप अनुच्छेद 20 और 21 के तहत गारंटीकृत अधिकारों को छोड़कर।
- संसद सशस्त्र बलों, अर्ध–सैन्य बलों, पुलिस बलों, खुफिया एजेंसियों और अनुरूप सेवाओं के सदस्यों पर इन अधिकारों के प्रयोग को प्रतिबंधित या निरस्त कर सकती है (अनुच्छेद 33)।
- किसी भी क्षेत्र में मार्शल लॉ के दौरान इन अधिकारों के प्रयोग को प्रतिबंधित किया जा सकता है (अनुच्छेद 34)।
- उनमें से अधिकांश सीधे तौर पर लागू करने योग्य हैं, जबकि अन्य को विशेष रूप से उन्हें प्रभावी करने के लिए बनाए गए कानून के आधार पर लागू किया जा सकता है। पूरे देश में एकरूपता सुनिश्चित करने के लिए केवल संसद ही इन अधिकारों के संबंध में कानून बना सकती है (अनुच्छेद 35)।

भारतीय संविधान के अंतर्गत मौलिक अधिकार

भारतीय संविधान के भाग III में अनुच्छेद 12 से 35 तक मौलिक अधिकारों से संबंधित प्रावधानों का उल्लेख किया गया है। इन प्रावधानों का विस्तृत अवलोकन नीचे दिया गया हैः–

राज्य की परिभाषा (अनुच्छेद 12)

अनुच्छेद 12 भाग III के लिए 'राज्य' शब्द को परिभाषित करता है। तदनुसार, राज्य में निम्नलिखित शामिल हैः–

- भारत सरकार और संसद, अर्थात केंद्र सरकार के कार्यकारी और विधायी अंग,
- राज्य सरकारें और विधायिकाएँ, अर्थात राज्य सरकार के कार्यकारी और विधायी अंग,
- सभी स्थानीय प्राधिकरण, अर्थात् नगरपालिकाएँ, पंचायतें, जिला बोर्ड, सुधार ट्रस्ट आदि।
- अन्य सभी प्राधिकरण, अर्थात सांविधिक या गैर–सांविधिक प्राधिकरण जैसे LIC, ONGC, SAIL आदि।

इन सभी प्राधिकरणों के कार्यों को भारतीय संविधान के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करने पर न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है।

मौलिक अधिकारों से असंगत या उनका हनन करने वाले कानून (अनुच्छेद 13)

अनुच्छेद 13 में प्रावधान है कि मौलिक अधिकारों से असंगत या कम करने वाली विधियाँ शून्य होगी।

- अनुच्छेद 13 के तहत यह प्रावधान स्पष्ट रूप से न्यायिक समीक्षा के सिद्धांत का प्रावधान करता है।
- न्यायिक समीक्षा की शक्ति अनुच्छेद 32 के तहत सर्वोच्च न्यायालय को और अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालयों को प्रदान की गई है।

अनुच्छेद 13 में 'विधि' शब्द में निम्नलिखित शामिल है जिन्हें मौलिक अधिकार का उल्लंघन करने के आधार पर शून्य घोषित किया जा सकता है –

- संसद या राज्य विधायिकाओं द्वारा बनाए गए स्थायी कानून,
- राष्ट्रपति या राज्यपालों द्वारा जारी अध्यादेश जैसे अस्थायी कानून,
- किसी भी प्रत्यायोजित विधायन, अध्यादेश, आदेश, उपविधि, नियम, विनियम या अधिसूचना जैसे वैधानिक उपकरण।
- गैर–विधायी कानून स्रोत अर्थात् कानून के समान मान्यता रखने वाला रिवाज या प्रथाएँ।

अनुच्छेद 13 में प्रावधान है कि संविधान संशोधन एक कानून नहीं है और उसे किसी भी मूल अधिकार के उल्लंघन के आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती है। हालाँकि, सर्वोच्च न्यायालय ने केशवानंद भारती मामले (1973) में माना कि किसी संविधान संशोधन को इस आधार पर चुनौती दी जा सकती है कि वह किसी मौलिक अधिकार का उल्लंघन करता है।

समानता का अधिकार (अनुच्छेद 14 से अनुच्छेद 18)

भारतीय संविधान के ये प्रावधान विधि के समक्ष सभी नागरिकों के लिए समान व्यवहार और अवसर सुनिश्चित करते हैं। इस अधिकार में निम्नलिखित शामिल है–

- कानून के समक्ष समानता और कानूनों से समान संरक्षण (अनुच्छेद 14) – यह प्रावधान सुनिश्चित करता है कि राज्य भारत के क्षेत्र के भीतर किसी भी व्यक्ति को कानून के समक्ष समानता या कानूनों से समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा। यह राज्य द्वारा मनमाने भेदभाव को प्रतिबंधित करता है और समान परिस्थितियों में समान व्यवहार की गारंटी प्रदान करता है।
- विशिष्ट आधारों पर भेदभाव का निषेध (अनुच्छेद 15) – यह प्रावधान केवल धर्म, मूलवंश , जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव को प्रतिबंधित करता है। यह सुनिश्चित करता है कि किसी भी नागरिक को केवल इन आधारों पर किसी अयोग्यता, दायित्व या प्रतिबंध के अधीन नहीं किया जाएगा।
- लोक नियोजन के विषय में अवसर की समानता (अनुच्छेद 16) – यह प्रावधान सार्वजनिक रोजगार या नियुक्ति के मामलों में अवसर की

समानता की गारंटी प्रदान करता है। यह इन मामलों में केवल धर्म, जाति, मूलवंश, लिंग, वंश, जन्म स्थान या निवास स्थान के आधार पर भेदभाव को प्रतिबंधित करता है।

- अस्पृश्यता का उन्मूलन (अनुच्छेद 17) – यह प्रावधान अस्पृश्यता को समाप्त करता है और किसी भी रूप में इसके अभ्यास को प्रतिबंधित करता है। यह अस्पृश्यता को एक सामाजिक बुराई के रूप में मान्यता देता है और भारतीय समाज में इस भेदभावपूर्ण प्रथा के उन्मूलन को सुनिश्चित करता है।
- उपाधियों का अंत (अनुच्छेद 18) – यह प्रावधान राज्य को व्यक्तियों को सैन्य और शैक्षणिक विशिष्टताओं को छोड़कर उपाधियाँ प्रदान करने से प्रतिबंधित करता है। यह किसी विदेशी राज्य से या उसके अधीन कोई उपाधि, उपहार, परिलब्धियाँ या कार्यालय स्वीकार करने के संबंध में कुछ प्रावधान भी करता है।

स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 19 से अनुच्छेद 22)

भारतीय संविधान के ये प्रावधान व्यक्तिगत स्वतंत्रताओं और स्वायत्तता की रक्षा करते हैं। इन अधिकारों में निम्नलिखित शामिल हैः–

- छह अधिकारों का संरक्षण (अनुच्छेद 19)– यह अनुच्छेद सभी नागरिकों को निम्नलिखित छह अधिकारों की गारंटी प्रदान करता हैः–
    - वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता (अनुच्छेद 19(1)(a)) – यह प्रावधान नागरिकों को भाषण, लेखन, मुद्रण या किसी अन्य माध्यम से अपने विचारों, रायों, विश्वासों और आस्थाओं को स्वतंत्र रूप से व्यक्त करने की स्वतंत्रता प्रदान करता है। हालाँकि, सार्वजनिक व्यवस्था, मानहानि, अपराध के लिए उकसाना आदि जैसे आधारों पर राज्य द्वारा उचित प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं।
    - सभा करने की स्वतंत्रता (अनुच्छेद 19(1)(b)) – नागरिकों को बिना हथियार के शांतिपूर्वक इकट्ठा होने का अधिकार है। इसमें सार्वजनिक बैठकें, प्रदर्शन और जुलूस निकालने का अधिकार शामिल है, लेकिन हड़ताल करने का अधिकार शामिल नहीं है।
    - संघ बनाने की स्वतंत्रता (अनुच्छेद 19(1)(c)) – नागरिकों को

संघ, संघ या सहकारी समितियाँ बनाने का अधिकार है, जो उन्हें सामूहिक रूप से सामान्य हितों या लक्ष्यों को आगे बढ़ाने में सक्षम बनाता है। हालाँकि, सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता, या भारत की संप्रभुता और अखंडता के हित में उचित प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं।

- आवागमन की स्वतंत्रता (अनुच्छेद 19(1)(d)) – प्रत्येक नागरिक को भारत के पूरे क्षेत्र में स्वतंत्र रूप से घूमने का अधिकार है। इस अधिकार पर जनता के सामान्य हितों और किसी अनुसूचित जनजाति के हितों की सुरक्षा के आधार पर उचित प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं।
- निवास करने की स्वतंत्रता (अनुच्छेद 19(1)(e)) – नागरिकों को भारत के किसी भी हिस्से में निवास करने और बसने की स्वतंत्रता है, जिससे भौगोलिक गतिशीलता और निवास स्थान निर्धारित करने में व्यक्तिगत विकल्प का प्रयोग हो सके।
- व्यापार करने की स्वतंत्रता (अनुच्छेद 19(1)(g)) – नागरिकों को किसी भी पेशे का अभ्यास करने या अपनी पसंद के किसी भी व्यवसाय, व्यापार करने का अधिकार है, बशर्ते कि जनता के सामान्य हित में कुछ प्रतिबंध लगाए जाएं।

- अपराधों के लिए दोषसिद्धि के संबंध में संरक्षण (अनुच्छेद 20)– यह प्रावधान नागरिक, विदेशी या किसी व्यक्ति को मनमाने और अत्यधिक दंड के खिलाफ सुरक्षा प्रदान करता है।
    - भूतलक्षी दांडिक विधियों से सरंक्षण (अनुच्छेद 20(1))– किसी भी व्यक्ति को केवल उसी समय लागू कानून का उल्लंघन करने के लिए दोषी ठहराया जा सकता है, जब अपराध हुआ था। साथ ही, व्यक्ति को उस समय लागू कानून द्वारा निर्धारित दंड से अधिक दंड नहीं दिया जा सकता है।
    - दोहरे दंड से संरक्षण (अनुच्छेद 20(2))– किसी व्यक्ति को उस अपराध के लिए दोबारा दंडित नहीं किया जा सकता है जिसके लिए उसे पहले ही बरी या दोषी ठहराया जा चुका है।

- अपने ही विरुद्ध गवाही देने से संरक्षण (अनुच्छेद 20(3))– किसी भी अपराध के लिए आरोपी व्यक्ति को अपने खिलाफ गवाह बनने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा।

- जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का संरक्षण (अनुच्छेद 21)– यह अनुच्छेद प्रावधान करता है कि कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अलावा किसी भी व्यक्ति को उसके जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जाएगा। यह अधिकार नागरिकों और गैर–नागरिकों दोनों के लिए उपलब्ध है और व्यक्तिगत अधिकारों की आधारशिला के रूप में कार्य करता है।

- शिक्षा का अधिकार (अनुच्छेद 21।)– यह प्रावधान 6 से 14 वर्ष की आयु के बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार गारंटी देता है। यह राज्य को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक पहुँच प्रदान करने का आदेश देता है,इसके साथ ही यह भी सुनिश्चित करता है कि प्रत्येक बच्चे को बिना किसी भेदभाव के शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिले। इस प्रावधान को 2002 के 86वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा जोड़ा गया था।

- गिरफ्तारी और निरोध के खिलाफ संरक्षण (अनुच्छेद 22)– यह प्रावधान गिरफ्तार या हिरासत में लिए गए व्यक्तियों को कुछ सुरक्षा प्रदान करता है, जिसमें गिरफ्तारी के आधारों के बारे में सूचित किया जाना, कानूनी सलाहकार से परामर्श करने और उनका बचाव करने का अधिकार और गिरफ्तारी के 24 घंटे के भीतर मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश होने का अधिकार आदि शामिल है। यह मनमाने ढंग से हिरासत को रोकता है और हिरासत में व्यक्तियों के साथ उचित व्यवहार सुनिश्चित करता है।

शोषण के विरुद्ध अधिकार (अनुच्छेद 23 से अनुच्छेद 24)

भारतीय संविधान के ये प्रावधान नागरिकों को विशेष रूप से कमजोर वर्गों को शोषण से बचाने के लिए कुछ सुरक्षा उपाय प्रदान करते हैं। इस अधिकार के अंतर्गत शामिल विभिन्न अधिकार हैं–

- मानव तस्करी एवं बंधुआ मजदूरी का निषेध (अनुच्छेद 23)– यह प्रावधान मानव तस्करी और बंधुआ मजदूरी को प्रतिबंधित करता है। यह ऐसे कृत्यों को दंडनीय अपराध घोषित करता है।

- कारखानों में बच्चों के रोजगार का निषेध (अनुच्छेद 24)– यह प्रावधान किसी भी कारखाने, खदान या अन्य खतरनाक गतिविधियों में चौदह वर्ष से कम आयु के बच्चों के रोजगार को प्रतिबंधित करता है। हालाँकि, यह उन्हें किसी भी गैर–हानिकारक कार्य में रोजगार देने पर रोक नहीं लगाता है।

धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 25 से 28)

भारतीय संविधान के ये प्रावधान व्यक्तियों को अन्तरूकरण की स्वतंत्रता और धर्म को अबाध रुप से मानने, पालन करने और उसका प्रचार करने की स्वतंत्रता की गारंटी दी जाती हैं। यह राज्य को तटस्थ रहने और सभी धर्मों के साथ समान व्यवहार के द्वारा धर्मनिरपेक्षता सुनिश्चित करने का प्रयास करता है।

- अंतरात्मा की स्वतंत्रता तथा धर्म को मानने, आचरण एवं प्रचार करने की स्वतंत्रता (अनुच्छेद 25)– इस अनुच्छेद के अनुसार, सभी व्यक्तियों को अंतरात्मा की स्वतंत्रता तथा स्वतंत्र रूप से धर्म को मानने, पालन करने और उसका प्रचार करने का समान अधिकार है। इनके निहितार्थ हैं–
    - अंतरात्मा की स्वतंत्रता– सभी को अपनी इच्छा के अनुसार ईश्वर को मानने की स्वतंत्रता है।
    - अंगीकार करने का अधिकार– अपने धार्मिक विश्वासों और आस्था को स्वतंत्र रूप से घोषित करना।
    - अभ्यास करने का अधिकार– धार्मिक पूजा, अनुष्ठान, समारोह, विश्वासों और विचारों का स्वतंत्र रूप से अभ्यास करना।
    - प्रचार करने का अधिकार– किसी की धार्मिक मान्यताओं को दूसरों तक प्रसारित या प्रसारित करना। हालाँकि, इसमें किसी अन्य व्यक्ति को अपने धर्म में परिवर्तित करने का अधिकार शामिल नहीं है।
- धार्मिक कार्यों के प्रबंधन की स्वतंत्रता (अनुच्छेद 26)– इस अनुच्छेद के प्रावधानों के अनुसार, प्रत्येक धार्मिक संगठन / संप्रदाय को निम्नलिखित अधिकार प्राप्त होंगे–
    - धार्मिक कार्यों / प्रयोजनों के लिए संस्थानों की स्थापना और

  बनाए रखने का अधिकार।

  - अपने धर्म विषयक कार्यों का प्रबंधन करने का अधिकार।
  - चल और अचल संपत्ति का स्वामित्व और अधिग्रहण करने का अधिकार।
  - ऐसी संपत्ति का विधि के अनुसार प्रबंधन करने का अधिकार।

- किसी विशिष्ट धर्म की अभिवृद्धि के लिए करों के विषय में स्वतंत्रता (अनुच्छेद 27)– यह प्रावधान किसी विशेष धर्म या धार्मिक संप्रदाय को बढ़ावा देने या बनाए रखने के लिए राज्य को कर आरोपित करने से प्रतिबंध करता है।
  - यह प्रावधान सविंधान में उल्लिखित धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांत को बनाए रखता है और साथ में यह भी सुनिश्चित किया जाता है कि राज्य धर्म के मामलों में तटस्थ रहे, जिससे सभी नागरिकों के लिए समानता और धार्मिक स्वतंत्रता की भावना को बढ़ावा मिलता है।
- कुछ शिक्षा संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा या धार्मिक उपासना में उपस्थित होने के विषय में स्वतंत्रता (अनुच्छेद 28)– यह शैक्षणिक संस्थानों की विभिन्न श्रेणियों में धार्मिक शिक्षा के लिए प्रावधान करता है, जैसा कि नीचे वर्णित है–
  - राज्य द्वारा पूर्ण रुप से संचालित संस्थान – धार्मिक शिक्षा पूर्ण रुप से प्रतिबंधित है।
  - राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त संस्थान – धार्मिक शिक्षा स्वैच्छिक आधार पर अर्थात् व्यक्ति की सहमति से मान्य है।
  - राज्य से आर्थिक सहायता प्राप्त करने वाले संस्थान – धार्मिक शिक्षा स्वैच्छिक आधार पर यानी व्यक्ति की सहमति से मान्य है।
  - राज्य द्वारा प्रशासित लेकिन किसी ट्रस्ट के तहत स्थापित संस्थान – धार्मिक शिक्षा की अनुमति है।

सांस्कृतिक एवं शैक्षिक अधिकार (अनुच्छेद 29 से अनुच्छेद 30)

भारतीय संविधान के ये प्रावधान अल्पसंख्यकों के संस्कृति, भाषा और लिपि के संरक्षण के अधिकारों की रक्षा करते हैं।

- अल्पसंख्यकों के हितों का संरक्षण (अनुच्छेद 29) – इस अनुच्छेद के प्रावधानों के अनुसार
    - भारत के प्रत्येक नागरिकों को, जिसकी अपनी विशिष्ट भाषा, लिपि या संस्कृति हो, उसे संरक्षित करने का अधिकार होगा।
    - किसी भी नागरिक को केवल धर्म, मूलवंश, जाति या भाषा के आधार पर राज्य द्वारा संचालित या राज्य निधि से सहायता प्राप्त करने वाले किसी भी शैक्षणिक संस्थान में प्रवेश से वंचित नहीं किया जाएगा।

जैसा कि उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया है कि अनुच्छेद में 'नागरिकों का वर्ग' वाक्यांश के प्रयोग का अर्थ, केवल अल्पसंख्यकों तक ही सीमित नहीं है बल्कि इस अनुच्छेद के प्रावधान बहुसंख्यक समुदाय पर भी लागू होता है।

- अल्पसंख्यकों को शिक्षण संस्थान स्थापित और संचालित करने का अधिकार (अनुच्छेद 30) – यह प्रावधान अल्पसंख्यकों (दोनों धार्मिक और भाषाई) को कुछ अधिकार प्रदान करता है, जैसे कि उनकी रूचि के शिक्षण संस्थान स्थापित करने और उनका प्रबंधन करने का अधिकार, अपने बच्चों को उनकी अपनी भाषा में शिक्षा प्रदान करने का अधिकार आदि।
    - यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि इस प्रावधान के तहत संरक्षण केवल अल्पसंख्यकों (धार्मिक या भाषाई) तक ही सीमित है और नागरिकों के किसी भी वर्ग (जैसा कि अनुच्छेद 29 के तहत है) तक विस्तारित नहीं होता है।

संवैधानिक उपचारों का अधिकार (अनुच्छेद 32)

यह अनुच्छेद मौलिक अधिकारों के उल्लंघन की स्थिति में उन्हें लागू कराने के लिए उपचार का अधिकार प्रदान करता है। यह उसी के संबंध में निम्नलिखित प्रावधान करता है–

- मौलिक अधिकारों का उल्लंघन होने पर कोई भी व्यक्ति अपने मौलिक अधिकारों के सरंक्षण अथवा प्रवर्तन के लिए सीधे सर्वोच्च न्यायालय में जा सकते है।
- सर्वोच्च न्यायालय को मौलिक अधिकारों के प्रवर्तन के लिए निर्देश,

आदेश या रिट जारी करने की शक्ति है।

- संसद किसी अन्य न्यायालय को मौलिक अधिकारों को लागू करने के लिए निर्देश, आदेश या रिट जारी करने का अधिकार दे सकती है।
- सर्वोच्च न्यायालय में जाने का अधिकार तब तक निलंबित नहीं किया जाएगा जब तक कि संविधान द्वारा अन्यथा प्रदान न किया गया हो।

ये प्रावधान मौलिक अधिकारों को लागू कराने का अधिकार प्रदान करते हैं, जिससे मौलिक अधिकार वास्तविक बनते हैं।

सशस्त्र बल (अनुच्छेद 33)

- यह प्रावधान संसद को ऐसे कानून बनाने का अधिकार देता है जो सशस्त्र बलों, पुलिस बलों, खुफिया एजेंसियों या सार्वजनिक व्यवस्था के रखरखाव के लिए नियुक्त समान बलों के सदस्यों के लिए कुछ मौलिक अधिकारों के आवेदन को प्रतिबंधित या संशोधित करते हैं।
- इस प्रावधान का उद्देश्य राष्ट्रीय सुरक्षा के हित में उनके कर्तव्यों का उचित निर्वहन तथा सशस्त्र बलों के बीच अनुशासन बनाए रखना है।

मार्शल लॉ (अनुच्छेद 34)

- यह प्रावधान भारत के क्षेत्र के भीतर किसी भी क्षेत्र में मार्शल लॉ के संचालन के दौरान मौलिक अधिकारों पर प्रतिबंध का प्रावधान करता है।
- हालाँकि, संविधान में कहीं भी 'मार्शल लॉ' शब्द को परिभाषित नहीं किया गया है।

इस भाग के प्रावधानों को लागू करने के लिए कानून (अनुच्छेद 35)

यह प्रावधान स्पष्ट करता है कि कुछ मौलिक अधिकारों को लागू करने के उद्देश्य से कानून बनाने का अधिकार केवल संसद के पास है। यह इन अधिकारों की प्रकृति और उनके उल्लंघन के लिए दंड के संबंध में पूरे भारत में एकरूपता सुनिश्चित करता है।

मौलिक अधिकारों का महत्त्व

भारतीय संविधान के मौलिक अधिकार निम्नलिखित दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण हैं–

- ये लोकतांत्रिक व्यवस्था की आधारशिला निर्मित करते हैं और लोगों को राजनीतिक–प्रशासनिक प्रक्रिया में भाग लेने का अवसर प्रदान करते हैं।
- ये राज्यों की तानाशाही पर नियंत्रण रखकर व्यक्तिगत स्वतंत्रता और कानून के शासन की रक्षा करते हैं।
- मौलिक अधिकार सामाजिक न्याय की नींव रखते हैं और व्यक्तियों की गरिमा सुनिश्चित करते हैं।
- ये अल्पसंख्यकों और कमजोर वर्गों के हितों की रक्षा करते हैं, इस प्रकार सामाजिक न्याय को बढ़ावा देते हैं।
- ये राष्ट्र के धर्मनिरपेक्ष ताने–बाने को सुदृढ़ीकृत करते हैं।

मौलिक अधिकारों की आलोचनाएँ और सीमाएँ

भारतीय संविधान के मौलिक अधिकारों की अवधारणा, जो संविधान के मूल सिद्धांतों में से एक है, कुछ कमियों और आलोचनाओं के साथ विद्यमान है। इनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण बिंदु निम्नलिखित है–

- अत्यधिक सीमाएँ– कई मौलिक अधिकारों में अपवाद, प्रतिबंध और योग्यताएँ जुड़ी हुई हैं, जिससे उनकी परिधि और प्रभावी कार्यान्वयन सीमित हो जाता है।
- सामाजिक और आर्थिक अधिकारों का अभाव– मौलिक अधिकारों की सूची में सामाजिक सुरक्षा, रोजगार, विश्राम, अवकाश आदि मौलिक सामाजिक और आर्थिक अधिकारों को शामिल नहीं करती है, जिससे इसकी व्यापकता प्रभावित होती है।
- अस्पष्टता– कुछ शब्दों को स्पष्ट परिभाषा नहीं दी गई है, जिससे अस्पष्टता उत्पन्न होती है। उदाहरण के लिए, 'सार्वजनिक व्यवस्था', 'अल्पसंख्यक', 'उचित प्रतिबंध' आदि।
- स्थायित्व नहीं– संसद इन अधिकारों को सीमित या समाप्त कर सकती है, जिससे इनकी स्थायित्व पर प्रश्न उठता है। उदाहरण के लिए, 1978 में संपत्ति के मौलिक अधिकार को समाप्त कर दिया गया था।
- आपातकाल के दौरान निलंबन– राष्ट्रीय आपातकाल के दौरान मौलिक

अधिकारों को निलंबित किया जा सकता है, जो लोकतंत्र के मूल सिद्धांतों के विपरीत है और लाखों लोगों के अधिकारों के लिए खतरा बन सकता है। केवल अनुच्छेद 20 और 21 को छोड़कर अन्य सभी अधिकार निलंबित किये जा सकते हैं।

- महँगा उपाय– इन अधिकारों की रक्षा का बोझ न्यायपालिका पर होता है, लेकिन न्यायिक प्रक्रिया काफी महँगी है, जिससे जन सामान्य के लिए इन अधिकारों का उपयोग करना मुश्किल हो जाता है।
- निवारक निरोध– निवारक निरोध (अनुच्छेद 22) का प्रावधान व्यक्तिगत स्वतंत्रता का हनन करता है और राज्य को अत्यधिक शक्ति प्रदान करता है।
- सुसंगत दर्शन का अभाव– मौलिक अधिकारों के अध्याय में एक स्पष्ट और सुसंगत दर्शन का अभाव है। सर आइवर जेनिंग्स के अनुसार, ये अधिकार किसी सुसंगत दर्शन पर आधारित नहीं हैं, जिससे उनकी व्याख्या में न्यायपालिका को चुनौतियों का सामना करना पड़ता है।

हालांकि इन आलोचनाओं और सीमाओं के बावजूद, मौलिक अधिकार भारतीय लोकतंत्र की आत्मा हैं। वे राज्यों के मनमाने कार्यों के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान करते हैं और नागरिकों के संरक्षण और सशक्तीकरण को सुनिश्चित करते हैं।

मौलिक अधिकारों की आलोचनाएँ अस्पष्टता, सीमित दायरा, सामाजिक और आर्थिक अधिकारों की कमी, स्थायित्व का अभाव, आपातकाल के दौरान निलंबन, महँगा उपाय, निवारक निरोध और सुसंगत दर्शन के अभाव को इंगित करती हैं।

बावजूद इसके, मौलिक अधिकार न्याय, समानता और स्वतंत्रता के प्रतीक हैं और एक ऐसे समाज के निर्माण में योगदान देते हैं जहाँ प्रत्येक व्यक्ति की गरिमा और अधिकारों का सम्मान किया जाता है। भारत की विकास यात्रा में इन अधिकारों का संरक्षण और प्रभावी कार्यान्वयन आवश्यक है, जो लोकतंत्र, समावेशिता और मानवाधिकारों पर आधारित भविष्य के निर्माण का मार्ग प्रशस्त करेगा।

5

मौलिक कर्तव्य

मौलिक कर्तव्यों की अवधारणा के अंतर्गत नागरिकों में जिम्मेदारी एवं सामूहिक कल्याण के सार को विकसित करना है। भारतीय संविधान में निहित मौलिक कर्तव्य नागरिकों को अपने देश एवं पर्यावरण के साथ एक सौहार्दपूर्ण एवं उत्पादकपूर्ण संबंध बनाने में मार्गदर्शक के रूप में कार्य करते हैं।

मौलिक कर्तव्यों का अर्थ

मौलिक कर्तव्य वे नैतिक दायित्व हैं जो भारत के प्रत्येक नागरिक को संविधान द्वारा सौंपे गए हैं। ये कर्तव्य नागरिकों में देशभक्ति, राष्ट्रीय एकता और भाईचारे की भावना को बढ़ावा देने, सकारात्मक नागरिकता को प्रोत्साहित करने और संविधान के मूल्यों को बनाए रखने के लिए निर्धारित किए गए हैं।

भारत में मौलिक कर्तव्यों की सूची

संविधान के भाग IV-A में अनुच्छेद 51A ग्यारह मौलिक कर्तव्य प्रदान करता है। ये मौलिक कर्तव्य नीचे उल्लिखित हैं–

- संविधान का पालन करना तथा उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रीय ध्वज तथा राष्ट्रीय गान का सम्मान करना।
- स्वतंत्रता के लिए राष्ट्रीय संघर्ष को प्रेरित करने वाले महान आदर्शों को संजोना एवं उनका पालन करना।
- भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता को बनाए रखना और उनकी

रक्षा करना।

- देश की रक्षा करना और आह्वान किए जाने पर राष्ट्रीय सेवा करना।
- धर्म, भाषा और क्षेत्रीय या विविधताओं से परे भारत के सभी लोगों में सद्भाव और समान भाईचारे की भावना का प्रचार करना तथा महिलाओं की गरिमा के लिए अपमानजनक प्रथाओं का त्याग करना।
- देश की समृद्ध मिश्रित संस्कृति की विरासत को महत्त्व देना और उसका संरक्षण करना।
- वन, झील, नदियों और वन्यजीवों सहित प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा करना और उसमें सुधार करना, तथा जीवों के प्रति दयाभाव रखना।
- वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानवतावाद, खोज तथा सुधार की भावना का विकास करना।
- सार्वजनिक संपत्ति की रक्षा करना तथा हिंसा का त्याग करना।
- व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधि के सभी क्षेत्रों में उत्कृष्टता की ओर निरंतर प्रयास करना ताकि राष्ट्र निरंतर उच्च प्रयासों और उपलब्धियों के नए स्तरों तक पहुँचे।
- अपने छह से चौदह वर्ष की आयु के बीच के बच्चों या आश्रितों को शिक्षा के अवसर प्रदान करना (वर्ष 2002 में 86वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा जोड़ा गया)।

भारत में मौलिक कर्तव्यों का विकास

मूलतः, भारतीय संविधान में मौलिक कर्तव्य शामिल नहीं थे। हालाँकि, 1975 से 1977 के बीच आंतरिक आपातकाल के दौरान इनकी आवश्यकता और अनिवार्यता महसूस की गई। तदनुसार, सरकार द्वारा कदम उठाए गए जिससे भारत में मौलिक कर्तव्यों का समावेश और विकास हुआ–

सरदार स्वर्ण सिंह समिति

वर्ष 1976 में, भारत सरकार ने मौलिक कर्तव्यों के बारे में सिफारिशें करने के लिए सरदार स्वर्ण सिंह समिति का गठन किया।

- समिति ने पाया कि अधिकारों के उपभोग के अतिरिक्त, नागरिकों को

कुछ कर्तव्यों का पालन भी करना चाहिए।

- तदनुसार, इस समिति ने संविधान में मौलिक कर्तव्यों पर एक अलग अध्याय को शामिल करने की सिफारिश की, इनमे 8 मौलिक कर्तव्यों की सूची थी।

42वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1976

केंद्र सरकार ने सरदार स्वर्ण सिंह समिति की सिफारिशों को स्वीकार कर लिया और भारत के संविधान में मौलिक कर्तव्यों की सूची को शामिल करने का निर्णय लिया।

- इसके अनुसार, 1976 में 42वें संविधान संशोधन अधिनियम को अधिनियमित किया गया, जिसने संविधान में एक नया भाग (भाग प्ट।) जोड़ा। इस नए भाग में केवल एक अनुच्छेद (अनुच्छेद 51।) है जो भारत के नागरिकों के दस मौलिक कर्तव्यों की एक संहिता निर्दिष्ट करता है।
- यह ध्यान देने योग्य है कि यद्यपि स्वर्ण सिंह समिति ने आठ मौलिक कर्तव्यों को शामिल करने की सिफारिश की थी, 42वें संविधान संशोधन अधिनियम में दस मौलिक कर्तव्यों को शामिल किया गया।

86वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 2002

वर्ष 2002 के 86वें संविधान संशोधन अधिनियम ने एक और मौलिक कर्तव्य (छह से चौदह वर्ष की आयु के बीच अपने बच्चे को शिक्षा के अवसर प्रदान करना) जोड़ा।

तब से भारतीय संविधान में मौलिक कर्तव्यों की सूची निरंतर बनी हुई है।

मौलिक कर्तव्यों की विशेषताएँ

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 51-A में उल्लिखित मौलिक कर्तव्यों में कई मुख्य विशेषताएं हैं जो इस प्रकार हैं–

- गैर–योग्यसंगत – ये कर्तव्य न्याय योग्य नहीं हैं, अर्थात ये न्यायपालिका के माध्यम से कानून द्वारा लागू नहीं किए जा सकते। यद्यपि, ये नागरिकों के लिए नैतिक दायित्वों और मार्गदर्शक सिद्धांतों के रूप में कार्य करते हैं।

- प्रवर्तनीयता का दायरा – ये कर्तव्य केवल नागरिकों तक ही सीमित हैं और विदेशियों तक विस्तारित नहीं हैं।
- विभिन्न स्रोतों से प्राप्त – ये कर्तव्य विभिन्न स्रोतों से प्रेरणा लेते हैं, जिनमें पूर्व सोवियत संघ का संविधान, महात्मा गाँधी जी के विचार और अन्य संवैधानिक विशेषज्ञ शामिल हैं। वे राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय मूल्यों के मिश्रण को दर्शाते हैं।
- निदेशात्मक प्रकृति – ये कर्तव्य नागरिकों के व्यवहार और आचरण का मार्गदर्शन करते हैं और एक जिम्मेदार और कानून का पालन करने वाले समाज के निर्माण के लिए नैतिक दिशाबोध के रूप में कार्य करते हैं।
- भारतीय मूल्यों का संहिताकरण – ये उन मूल्यों का उल्लेख करते हैं जो भारतीय परंपराओं और प्रथाओं का हिस्सा रहे हैं। इस प्रकार, ये अनिवार्य रूप से भारतीय जीवन शैली के अभिन्न कार्यों का संहिताकरण हैं।
- नैतिक और नागरिक कर्तव्य – इनमें से कुछ नैतिक कर्तव्य हैं जैसे राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम के महान आदर्शों को संजोना, जबकि अन्य नागरिक कर्तव्य हैं जैसे संविधान का सम्मान करना।

मौलिक कर्तव्यों का महत्त्व

मौलिक कर्तव्य नागरिकों में जवाबदेहिता, देशभक्ति और सामाजिक सद्भाव की भावना पैदा करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उनके महत्त्व को रेखांकित करने वाले कुछ बिंदु इस प्रकार हैं–

- नागरिक चेतना को बढ़ावा देना – ये कर्तव्य नागरिकों में राष्ट्र और समाज के प्रति नागरिक चेतना और जवाबदेही की भावना पैदा करते हैं। उदाहरण के लिए, ये उन्हें संविधान में निहित मूल्यों को बनाए रखने के उनके दायित्वों का स्मरण कराते हैं।
- शिक्षा और संस्कृति को बढ़ावा देना – कुछ मौलिक कर्तव्य शिक्षा, वैज्ञानिक दृष्टिकोण और वैज्ञानिक ज्ञान के विकास के महत्त्व पर बल देते हैं, साथ ही साथ भारत की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत को भी संजोते हैं।

- अधिकारों के साथ सामंजस्य – ये कर्तव्य संविधान में निहित मौलिक अधिकारों के पूरक हैं। यद्यपि मौलिक अधिकार नागरिकों को कुछ प्राप्त करने का अधिकार देते हैं, मौलिक कर्तव्य उन्हें समाज और राष्ट्र के प्रति उनके पारस्परिक दायित्वों की स्मरण कराते हैं।
- लोगों की भागीदारी को बढ़ावा देना – ये नागरिकों में यह भावना पैदा करते हैं कि वे केवल दर्शक नहीं बल्कि राष्ट्रीय लक्ष्यों को प्राप्त करने में सक्रिय भागीदार हैं।
- राष्ट्रीय एकता और अखंडता का संरक्षण – ये कर्तव्य संविधान के आदर्शों का सम्मान करने और व्यक्तिगत हितों से परे देश के कल्याण के लिए एक साझा प्रतिबद्धता को बढ़ावा देने के महत्त्व पर बल देते हैं।
- नैतिक और सदाचार मूल्यों का समावेश – ये कर्तव्य ईमानदारी, सत्यनिष्ठा और दूसरों के सम्मान को बढ़ावा देकर नागरिकों में नैतिक और सदाचार मूल्यों के विकास को प्रोत्साहित करते हैं।
- लोकतांत्रिक सिद्धांतों को बढ़ावा देना – ये कर्तव्य नागरिक जुड़ाव और जिम्मेदार नागरिकता के माध्यम से लोकतंत्र के सिद्धांतों को सुदृढ़ करते हैं, जो एक जीवंत लोकतंत्र के कामकाज के लिए आवश्यक हैं।
- सामाजिक कल्याण को बढ़ावा देना – ये कर्तव्य नागरिकों को सद्भाव और समान भाईचारे की भावना को बढ़ावा देने के लिए प्रोत्साहित करते हैं, जिससे सामाजिक सद्भाव और समावेशिता को बढ़ावा मिलता है।
- मौलिक अधिकारों के पूरक – यद्यपि मौलिक अधिकार व्यक्तियों को सशक्त बनाते हैं, मौलिक कर्तव्य नागरिकों को समाज और साथी नागरिकों के प्रति उनकी जिम्मेदारियों की याद दिलाते हैं। वे अधिकारों और जिम्मेदारियों के बीच संतुलन स्थापित करते हैं, यह सुनिश्चित करते हुए कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता का प्रयोग जिम्मेदारी से किया जाए।
- कानूनी और संवैधानिक ढांचा – ये कर्तव्य विधायकों और नीति निर्माताओं के लिए समाज की बेहतरी के लिए कानून और नीतियां बनाने में मार्गदर्शक सिद्धांतों के रूप में काम करते हैं।
- न्यायपालिका की सहायता – जैसा कि सुप्रीम कोर्ट द्वारा निर्णय दिया गया है, किसी भी कानून की संवैधानिकता का निर्धारण करते समय,

अगर न्यायपालिका को यह महसूस होता है कि विचाराधीन कानून किसी मौलिक कर्तव्य को लागू करने का प्रयास करता है, तो वह ऐसे कानून को अनुच्छेद 14 (कानून के समक्ष समानता) या अनुच्छेद 19 (छह स्वतंत्रताएं) के संबंध में 'उचित' मान सकती है। जैने, वे न्यायपालिका को किसी कानून की संवैधानिक वैधता की जांच और निर्धारित करने में सहायता करते हैं।

- वैश्विक मान्यता – मौलिक कर्तव्यों को शामिल करने से वैश्विक पटल पर भारत की स्थिति मजबूत होती है क्योंकि यह लोकतांत्रिक मूल्यों और संवैधानिक सिद्धांतों के प्रति उसके नागरिकों के समर्पण को दर्शाता है।

मौलिक कर्तव्यों पर उच्चतम न्यायालय के विचार

- श्री रंगनाथ मिश्रा बनाम भारत संघ (2003)– इस मामले में, उच्चतम न्यायालय ने कहा कि मौलिक कर्तव्यों को न केवल कानूनी प्रतिबंधों के माध्यम से बल्कि सामाजिक प्रतिबंधों के माध्यम से भी आदरपूर्वक बनाए रखा जाना चाहिए। इसके अलावा, माननीय न्यायालय ने मौलिक कर्तव्यों के बारे में जागरूकता के व्यापक प्रसार के संबंध में न्यायमूर्ति जे.एस. वर्मा समिति की सिफारिशों के कार्यान्वयन का निर्देश दिया।
- एम्स छात्र संघ बनाम एम्स –उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि मौलिक कर्तव्यों का महत्त्व मौलिक अधिकारों के समान है। माननीय न्यायालय ने देखा कि दोनों को 'मौलिक' के रूप में नामित किया जाना उनके समान महत्त्व को रेखांकित करता है।

मौलिक अधिकारों और मौलिक कर्तव्यों के बीच संबंध

मौलिक अधिकारों और मौलिक कर्तव्यों के बीच के संबंध को सहसंबंधी और पूरक के रूप में सारांशित किया जा सकता है। नागरिकों को अपने मौलिक अधिकारों का उपभोग करने के लिए सक्षम वातावरण बनाने के लिए अन्य नागरिकों द्वारा मौलिक कर्तव्यों का पालन करना आवश्यक है। इसी प्रकार, अधिकार कर्तव्यों के अग्रदूत होते हैं, और अधिकारों की पूर्ति के बिना, व्यक्ति अपने कर्तव्यों का पालन नहीं कर सकते।

उदाहरण के लिए, शिक्षा के अधिकार की पूर्ति के बिना, महिलाओं की गरिमा

का सम्मान करने के कर्तव्य की अपेक्षा करना कठिन है।

मौलिक अधिकारों और मौलिक कर्तव्यों के बीच अविभाज्य संबंध को निम्नानुसार दर्शाया गया है–

मौलिक अधिकार	**मौलिक कर्तव्य**
अनुच्छेद 19 वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का प्रावधान करता है। यद्यपि, इसके द्वारा यह भी प्रमाणित किया जाता है कि राज्य अन्य बातों के साथ–साथ भारत की संप्रभुता, अखंडता और राज्य की सुरक्षा के आधार पर इस अधिकार पर युक्तियुक्त प्रतिबंध लगा सकता है।	अनुच्छेद 51।(c) नागरिकों पर "भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता को बनाए रखने और उनकी रक्षा करने" का मौलिक कर्तव्य का प्रावधान करता है।
अनुच्छेद 21 में महिलाओं के साथ शालीनता और सम्मान के साथ व्यवहार किए जाने के अधिकार को शामिल किया गया है।	अनुच्छेद 51।(e) नागरिकों को "महिलाओं की गरिमा के लिए अपमानजनक प्रथाओं का त्याग करने" का निर्देश देता है।
अनुच्छेद 21(।) 6–14 वर्ष की आयु के सभी बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा की गारंटी देता है।	अनुच्छेद 51।(k) नागरिकों से "अपने 6–14 वर्ष की आयु के बीच के बच्चे/संरक्षक को शिक्षा के अवसर प्रदान करने" के लिए निर्देश देता है।
अनुच्छेद 23(2) में प्रावधान है कि राज्य सैन्य सेवा जैसी सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए अनिवार्य सेवा लागू कर सकता है।	अनुच्छेद 51।(d) नागरिकों से "देश की रक्षा करने और राष्ट्रीय सेवा प्रदान करने के लिए आह्वान किए जाने पर ऐसा करने" के लिए निर्देश देता है।

राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांत और मौलिक कर्तव्य

राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांत भले ही न्यायिक रूप से लागू करने योग्य नहीं हैं, फिर भी वे नागरिकों द्वारा प्राप्त किए जाने वाले एक प्रकार के अधिकार का निर्माण करते हैं। इस प्रकार, राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांत और मौलिक कर्तव्यों के बीच संबंध भी सहसंबंधी और पूरक है। इसे निम्न उदाहरणों द्वारा दर्शाया गया है–

राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांत	मौलिक कर्तव्य
अनुच्छेद 48 (A) राज्य को "पेर्यावरण की रक्षा और सुधार करने तथा वनों एवं वन्यजीवों की रक्षा करने" का	अनुच्छेद 51A(g) नागरिकों का मौलिक कर्तव्य "वनों, वन्यजीवों आदि सहित प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा और सुधार करने" का निर्देश देता है।
अनुच्छेद 45 राज्य को "सभी बच्चों को 6 वर्ष की आयु पूरी होने तक उनके लिए पूर्व–प्राथमिक देखभाल और शिक्षा प्रदान करने" का निर्देश देता है।	अनुच्छेद 51A(k) नागरिकों से "अपने 6–14 वर्ष की आयु के बीच के बच्चे/संरक्षक को शिक्षा के अवसर प्रदान करने" के लिए निर्देश देता है।
अनुच्छेद 49 राज्य को "राष्ट्रीय महत्त्व घोषित किए गए कलात्मक और ऐतिहासिक महत्त्व के स्मारकों, स्थानों और वस्तुओं की रक्षा करने" का निर्देश देता है।	अनुच्छेद 51A(f) नागरिकों को "देश की समग्र संस्कृति की समृद्ध विरासत को महत्त्व देने और संरक्षित करने" का निर्देश देता है।

मौलिक कर्तव्यों और संविधान की प्रस्तावना के बीच संबंध

मौलिक कर्तव्यों और संविधान की प्रस्तावना के बीच का संबंध भारतीय संविधान में निहित आदर्शों और आकांक्षाओं को परस्पर मजबूत करने में निहित है। यद्यपि प्रस्तावना संविधान के उद्देश्यों और मार्गदर्शक सिद्धांतों को रेखांकित करता है, मौलिक कर्तव्य इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए नागरिकों की जिम्मेदारियों को स्पष्ट करते हैं।

उनके परस्पर सहसंबंधी और सुदृढ़ करने वाले संबंध को निम्न प्रकार से देखा जा सकता है–

मौलिक कर्तव्य	संविधान की प्रस्तावना
अनुच्छेद 51A(a) संविधान का पालन करने तथा इसके साथ ही संविधान के आदर्शों एवं संस्थाओं, राष्ट्रीय ध्वज और राष्ट्रगान का सम्मान करने का उल्लेख है।	प्रस्तावना में संविधान के आदर्शों को 'न्याय', 'स्वतंत्रता', 'समानता' और 'बंधुता' के रूप में उल्लेखित किया गया है। इसलिए, हमें अपने प्रत्येक शब्द, कार्य और विचार में संविधान के इन आदर्शों को याद रखना और उनका पालन

	करना चाहिए।
अनुच्छेद 51A(c) "भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता को बनाए रखने और उनकी रक्षा करने" का उल्लेख करता है।	इन मूलभूत मूल्यों का उल्लेख भारत की प्रस्तावना में किया गया है।
अनुच्छेद 51A(e) "धार्मिक, भाषाई और क्षेत्रीय या वर्गीय विविधताओं से ऊपर भारत के सभी लोगों के बीच सद्भाव और समान भाईचारे की भावना को बढ़ावा देने" का उल्लेख करता है।	संविधान की प्रस्तावना में 'बंधुता' का उल्लेख किया गया है जो व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता एवं अखंडता का आश्वासन देता है।

मौलिक कर्तव्यों की आलोचना

- न्यायिक प्रवर्तनीय न होना – मौलिक कर्तव्यों के न्यायिक प्रवर्तनीय न होने पर सवाल उठाए जाते हैं, क्योंकि इनका पालन न करने पर कोई कानूनी दंड नहीं दिया जाता है, जिससे उनकी प्रभावशीलता और उपयोगिता पर सवाल खड़े होते हैं।
- अपूर्ण सूची – मौलिक कर्तव्यों की सूची पूर्ण नहीं है क्योंकि इसमें कुछ बहुत महत्त्वपूर्ण कर्तव्यों को शामिल नहीं किया गया है, जैसे मतदान करना, करों का भुगतान करना आदि।
- अस्पष्टता और अनेकार्थता – कुछ आलोचकों का तर्क है कि मौलिक कर्तव्यों को व्यक्त करने के लिए प्रयोग की जाने वाली भाषा अस्पष्ट, व्यक्तिपरक और अनेकार्थी है, जिससे इन कर्तव्यों के सटीक परिधि और प्रकृति को निर्धारित करना चुनौतीपूर्ण हो जाता है। उदाहरण के लिए, 'उत्तम आदर्शों', 'समग्र संस्कृति' आदि वाक्यांशों के अलग–अलग अर्थ निकाले जा सकते हैं।
- अधिकारों के साथ असंतुलन – आलोचकों का तर्क है कि जहाँ संविधान नागरिकों को मौलिक अधिकारों की गारंटी देता है, वहीं मौलिक कर्तव्यों को थोपना अधिकारों के साथ असंतुलन पैदा करता है। उनका तर्क है कि नागरिकों को बिना किसी संगत कर्तव्य के लागू करने योग्य अधिकार होने चाहिए, क्योंकि कर्तव्य व्यक्तिगत स्वायत्तता

और स्वतंत्रता का उल्लंघन कर सकते हैं।

- अप्रभावी प्रचार और जागरूकता – कई नागरिक अपने कर्तव्यों से अनजान होते हैं या उन्हें अपने अधिकारों के लिए गौण समझते हैं, जो नागरिक दायित्व की भावना को बढ़ावा देने में उनकी प्रभावशीलता को कमजोर करता है।
- घटता महत्त्व – मौलिक कर्तव्यों को संविधान के भाग चार के परिशिष्ट के रूप में शामिल करना उनके मूल्य और महत्त्व को कम करने के रूप में देखा जाता है। आलोचकों का तर्क है कि उन्हें मौलिक अधिकारों के समकक्ष रखने के लिए उन्हें भाग तीन के बाद जोड़ा जाना चाहिए था।

आलोचनाओं के बावजूद, भारतीय संविधान के मौलिक कर्तव्य नागरिक चेतना, देशभक्ति और सामाजिक सद्भाव की भावना को बढ़ावा देने के लिए अभिन्न अंग हैं। नागरिकों को जिम्मेदार नागरिकता की ओर मार्गदर्शन देकर, वे राष्ट्र के सामूहिक कल्याण और प्रगति में योगदान करते हैं। कुल मिलाकर, वे संविधान के निर्माताओं द्वारा परिकल्पित एक सौहार्दपूर्ण और लोकतांत्रिक समाज के दृष्टिकोण को पूरा करने में सहायता करते हैं।

6

भारत में राष्ट्रपति और उनकी शक्तियां

भारत को दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र के रुप में जाना जाता है, और भारत में राष्ट्रपति का पद सबसे सर्वोच्च पद माना जाता है। सर्वोच्च का अर्थ होता है सबसे बड़ा। इसलिए हमारे देश भारत में राष्ट्रपति के पास बहुत सारे महत्वपूर्ण अधिकार व शक्तियाँ होती है।

भारत में राष्ट्रपति का पद देश का सर्वोच्च पद होता हैं। जैसे एक कप्तान एक पूरी टीम का नेतृत्व करता है, वैसे ही देश का राष्ट्रपति भी पूरे भारत देश का नेतृत्व करता है। राष्ट्रपति न केवल सरकार के सबसे प्रमुख होता है बल्कि राज्य के प्रमुख भी होते है। इसका मतलब यह होता है कि उनके पास बहुत सारी महत्वपूर्ण जिम्मेदारियां व कर्तव्य होते है।

इन्हें देश की एकता का प्रतीक माना जाता है। राष्ट्रपति की मुख्य भूमिका भारत के संविधान की रक्षा करना और उसे बनाए रखना है और लोगों के अधिकारों और कल्याण को सुनिश्चित करना है।

भारत का राष्ट्रपति लोकतंत्र के संरक्षक के रूप में भी कार्य करते है, जिसका अर्थ है कि वे यह सुनिश्चित करते हैं कि सरकार निष्पक्ष और न्यायपूर्ण तरीके से काम कर रही है। उनके पास संसद द्वारा पारित कानूनों को मंजूरी देने की शक्ति है और अगर उन्हें लगता है कि वे लोगों के सर्वोत्तम हित में नहीं हैं तो उन्हें पुनर्विचार के लिए वापस भी भेज सकते हैं।

इनके अतिरिक्त ये वैश्विक मंच पर भी भारत का प्रतिनिधित्व करते है।

जिसके लिए वो विभिन्न देशों के नेताओं से मिलकर बातचीत करते है। राष्ट्रपति देश में होने वाले महत्वपूर्ण अवसरों पर राष्ट्र को अपने विचारों से संबोधित करते हैं और नागरिकों को मार्गदर्शन और प्रेरणा प्रदान करते हैं।

राष्ट्रपति दिन–प्रतिदिन के सभी निर्णय स्वयं नहीं लेते है, बल्कि वे प्रधान मंत्री व मंत्रिपरिषद के साथ मिलकर इन सभी कामों को करते है।

राष्ट्रपति का चुनाव और नियुक्ति

भारत के राष्ट्रपति के चुनाव और नियुक्ति की प्रक्रिया को समझना भी आप सभी के लिए बहुत ही आवश्यक है कि यह चुनाव प्रक्रिया कैसे होती है। इसलिए चलिए इस प्रक्रिया को बहुत ही सरल शब्दों द्वारा आसानी से समझते है।

- योग्यताः– राष्ट्रपति के पद के लिए योग्यता के रुप में किसी व्यक्ति को सबसे पहले तो भारत का नागरिक होना चाहिए और उनकी उम्र कम से कम 35 वर्ष होनी चाहिए और कानून द्वारा कही हुई अन्य सभी योग्यताओं को पूरा करना चाहिए।
- चुनावः– भारत के राष्ट्रपति का चुनाव एक निर्वाचक मंडल द्वारा किया जाता है, जिसमें संसद के दोनों सदनों (लोकसभा और राज्यसभा) के निर्वाचित सदस्य और राज्यों की विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्य शामिल होते हैं।
- नामांकनः– इस पद के चुनाव के लिए उम्मीदवारों को संसद या राज्य विधानसभाओं के सदस्यों द्वारा नामित किया जाता है। एक व्यक्ति खुद भी इस चुनाव के लिए अपना नामंकन दाखिल कर सकता है।
- मतदानः– चुनाव एक गुप्त मतदान के माध्यम से किया जाता है, जहाँ निर्वाचक मंडल के सदस्य अपना वोट डालते हैं। प्रत्येक सदस्य के पास उनके द्वारा प्रतिनिधित्व की जाने वाली जनसंख्या के आधार पर वोटों की एक निश्चित संख्या होती है।
- वोटों की गिनतीः– वोटों की गिनती की जाती है और जिस उम्मीदवार को सबसे ज्यादा वोट मिलते हैं उसे विजयी घोषित कर दिया जाता है।
- नियुक्तिः– जब चुनाव प्रक्रिया पूरी हो जाती है तो किसी एक उम्मीदवार को विजेता घोषित कर दिया जाता है, जिसके बाद मुख्य चुनाव आयुक्त

आधिकारिक तौर पर उम्मीदवार और जनता को चुनाव के परिणाम के बारे में सूचित करते हैं।

- शपथ ग्रहणः— नव निर्वाचित राष्ट्रपति की अधिसूचना के बाद वे एक औपचारिक समारोह में पद की शपथ लेते हैं। भारत के मुख्य न्यायाधीश उन्हें यह शपथ दिलाते हैं, और इस प्रकार से नए राष्ट्रपति आधिकारिक तौर पर अपना पद ग्रहण करते हैं।
- कार्यकालः— भारत के राष्ट्रपति का कार्यकाल पांच वर्ष का होता है। उन्हें ज्यादा से ज्यादा दो कार्यकालों के लिए फिर से चुना जा सकता है।

आप सभी के लिए यह जानना भी बहुत जरुरी है कि राष्ट्रपति का चयन सीधे नागरिकों द्वारा नहीं किया जाता बल्कि जनता के द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों के द्वारा उन्हें चुना जाता है।

भारत के राष्ट्रपति की शक्तियां

भारत के राष्ट्रपति के पास बहुत सारे आवश्यक कार्य व शक्तियाँ होती है। चलिए उन सभी शक्तियों व कार्यों को विस्तार से जानते है।

- राज्य के प्रमुखः— राष्ट्रपति देश के औपचारिक प्रमुख के रूप में कार्य करता है। वे राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय दोनों मंचों पर भारत का प्रतिनिधित्व करते हैं और एकता और अखंडता के रूप में कार्य करते हैं।
- कार्यकारी शक्तियाँः— इनके पास कार्यकारी शक्तियाँ होती हैं और यह सुनिश्चित करता है कि सरकार सुचारू रूप से कार्य करें। ये चुनाव परिणामों और सिफारिशों के आधार पर प्रधान मंत्री और अन्य मंत्रियों के सदस्यों की नियुक्ति कर सकते हैं।
- विधायी शक्तियाँः— राष्ट्रपति विधायी प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वे संसद के सत्रों को शुरु व खत्म करते हैं और कुछ स्थितियों में लोकसभा को भंग भी कर सकते है राष्ट्रपति संसद द्वारा पारित विधेयकों को कानून में बदलने पर सहमति देता है।
- न्यायिक शक्तियाँः— इनके पास कुछ अपराधों के लिए दोषी ठहराए गए व्यक्तियों को क्षमा करने, उन्हें कम करने या सजा देने की शक्ति है। वे

भारत के मुख्य न्यायाधीश के परामर्श से सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों में न्यायाधीशों की नियुक्ति भी करते हैं।

- राजनयिक शक्तियांः— ये अन्य देशों के साथ राजनयिक संबंधों में भारत का प्रतिनिधित्व करते है। वे विदेशी राजदूतों और उच्च—स्तरीय व्यक्तियों का स्वागत करते हैं।
- आपातकालीन शक्तियाँः— युद्ध, आंतरिक कलह जैसी आपात स्थितियों के समय राष्ट्रपति आपातकाल की स्थिति की घोषणा कर सकता है। उनके पास देश की स्थिरता और सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक कार्रवाई करने का अधिकार है।
- प्रतीकात्मक कार्यः— राष्ट्र के प्रतीक के रूप में, राष्ट्रपति सम्मान और पुरस्कार प्रदान करते हैं, पदक प्रदान करते हैं, और आधिकारिक समारोह आयोजित करते हैं। वे स्वतंत्रता दिवस और गणतंत्र दिवस जैसे महत्वपूर्ण अवसरों पर राष्ट्र को संबोधित करते हैं।
- सलाहकार की भूमिकाः— ये कई प्रकार से प्राप्त जानकारी के आधार पर सरकार को राष्ट्रीय महत्व के मामलों पर सलाह देते हैं। वे मामलों के प्रशासन के संबंध में भारत के प्रधानमंत्री से जानकारी भी प्राप्त करते हैं और प्रदान करते हैं।

राष्ट्रपति की कार्यकारी शक्तियाँ

यहाँ राष्ट्रपति की कुछ कार्यकारी शक्तियाँ हैं, जिन्हें सरल शब्दों में समझाया गया हैः—

- प्रधान मंत्री की नियुक्तिः— एक आम चुनाव के बाद या जब प्रधान मंत्री इस्तीफा दे देते हैं, तो राष्ट्रपति लोकसभा में अधिकांश सीटों वाले राजनीतिक दल या गठबंधन वाली सरकार के नेता को प्रधान मंत्री नियुक्त कर सकते है।
- मंत्रियों की नियुक्तिः— ये प्रधानमंत्री की सलाह पर मंत्रियों की नियुक्ति करते है। प्रधान मंत्री व्यक्तियों को मंत्रियों के रूप में सेवा करने की सिफारिश करते हैं, और तैजतंचंजप उनकी नियुक्तियों को मंजूरी देते हैं।
- संसद को बुलाना और सत्रावसान करनाः— इनके पास संसद के सत्र

बुलाने और समाप्त करने का अधिकार है। ये प्रत्येक सत्र की शुरुआत की मांग कर सकते है और यदि आवश्यक हो तो सत्र को समाप्त भी कर सकते है।

- लोकसभा को भंग करनाः— कुछ परिस्थितियों में जब सरकार ठीक से काम नहीं कर पाती है, तो राष्ट्रपति लोकसभा को भंग कर सकते है और नए चुनाव करा सकते है।
- अध्यादेश जारी करनाः— बहुत ही आवश्यकता होने की स्थिति में या जब संसद का सत्र नहीं चल रहा हो, तो राष्ट्रपति अध्यादेश जारी कर सकते है। इन अध्यादेशों का उतना ही प्रभाव होता है जितना की संसद द्वारा पारित कानूनों का होता है।
- राज्यपालों की नियुक्तिः— राष्ट्रपति भारत के राज्यों में राज्यपालों की नियुक्ति करता है। राज्यपाल राज्य स्तर पर राष्ट्रपति और केंद्र सरकार के प्रतिनिधियों के रूप में कार्य करते हैं।
- विविध शक्तियाँः— इनके पास कई अन्य महत्वपूर्ण शक्तियाँ भी होती हैं, जैसे कि सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को नियुक्त करने, न्यायाधीशों को हटाने और पदक, सम्मान और पुरस्कार देने की शक्ति।

राष्ट्रपति की विधायी शक्तियाँ

- विधेयकों पर स्वीकृतिः— इनके पास संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित विधेयकों को स्वीकृति देने की शक्ति है। राष्ट्रपति की स्वीकृति मिलते ही कोई भी विधेयक कानून बन जाता है।
- विधेयकों की वापसीः— यदि राष्ट्रपति अपनी सहमति के लिए प्रस्तुत विधेयक से संतुष्ट नहीं है, तो वह विधेयक को पुनर्विचार के लिए संसद को वापस कर सकते है।
- सहमति रोकनाः— राष्ट्रपति के पास किसी विधेयक पर अपनी सहमति वापस लेने की शक्ति भी होती है। ऐसे मामलों में, बिल कानून नहीं बनता है। हालांकि, राष्ट्रपति की अनुमति रोकने की शक्ति कुछ संवैधानिक प्रावधानों के अधीन है।

- वीटो पावरः— इनके पास संसद द्वारा पारित विधेयक पर अपनी सहमति वापस लेने की शक्ति है। इसे पॉकेट वीटो के रूप में जाना जाता है, और यह बिल को कानून बनने से प्रभावी रूप से रोकता है।

भारत के राष्ट्रपति की न्यायिक शक्तियाँ

भारत में राष्ट्रपति की कुछ न्यायिक शक्तियाँ इस प्रकार हैंः—

- क्षमाः— राष्ट्रपति के पास कुछ अपराधों के लिए दोषी ठहराए गए व्यक्तियों को क्षमा, दमन, राहत, या दंड की छूट देने का अधिकार होता है। इस शक्ति का प्रयोग कुछ असाधारण मामलों में किया जाता है जहां च्तमेपकमदज व िपदकपं का यह मानना होता है कि इस प्रकार के मामलों में न्याय और दया की आवश्यकता है।

- सजा को बदलनाः— यदि किसी व्यक्ति को बहुत ही गंभीर सजा दी गई है तो राष्ट्रपति उस सजा में बदलाव कर सकते है। उदाहरण के लिए यदि किसी को मृत्युदंड की सजा दी जाती है तो राष्ट्रपति उस सजा में बदलाव करते हुए उसे आजीवन कारावास में बदल सकते है।

- सजा में कमीः— इनके द्वारा सजा की प्रकृति को बदले बिना ही सजा की अवधि को कम किया जा सकता है। उदाहरण के लिए अगर किसी को पांच साल की जेल की सजा सुनाई गई है, तो भारत के राष्ट्रपतिप इसे घटाकर तीन साल कर सकते है।

- राहतः— इनके द्वारा किसी भी सजा को देने में देरी की जा सकती है, ऐसी स्थितियों में जहां आगे की जांच या कानूनी कार्यवाही चल रही हो। जैसे किसी व्यक्ति की फांसी की सजा होने वाली हो लेकिन उसके लिए कोई और कार्यवाही चल रही है तो इनके द्वारा सजा में देरी की जा सकती है।

राष्ट्रपति के पास न्यायिक प्रक्रिया में हस्तक्षेप करने या अदालती फैसलों को बदलने का अधिकार नहीं है, परन्तु ये केवल असाधारण परिस्थितियों में दया या राहत देने के लिए अपनी इन सभी शक्तियों का प्रयोग कर सकते है।

राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियाँ

भारत के राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियाँ देश में आये हुए संकट के

समय दिए गए विशेष अधिकार के बारे में बताती है। आसान भाषा में कहे तो इन शक्तियों के इस्तेमाल देश में शांति, स्थिरता व सुरक्षा बनाए रखने के लिए किया जाता है। भारत में तीन प्रकार की आपात स्थितियाँ हैं:—

- राष्ट्रीय आपातकाल:— यदि किसी युद्ध के कारण या किसी दूसरे देश के हमला करने के कारण या सशस्त्र विद्रोह के कारण पूरे देश पर खतरा आता है, तो राष्ट्रपति राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा कर सकते है। जिसमें राज्यों के शासन को संभालने, कुछ मौलिक अधिकारों को निलंबित करने की शक्ति भी शामिल होती है।
- राज्य आपातकाल:— यदि भारत के किसी राज्य में कानून व्यवस्था सही से नहीं चल पा रही होती है और उस राज्य की सरकार उस स्थिति को ठीक से संभाल नहीं पाती या ये कहे कि कानून व्यवस्था को संभालने में असमर्थ होती है तो, राष्ट्रपति राज्य आपातकाल की घोषणा कर सकते है। जिसके दौरान वे उस राज्य में शांति व्यवस्था बनाए रखने के लिए राज्य का शासन अपने हाथ में ले सकते है।
- वित्तीय आपातकाल:— देश की आर्थिक स्थिरता को खतरे में डालने वाले गंभीर वित्तीय संकट के आने पर इनके द्वारा वित्तीय आपातकाल की घोषणा की जा सकती है। जिसमें राष्ट्रपति को देश के वित्त पर नियंत्रण व इस मुश्किल परिस्थिति को संभालना का अधिकार होता है।

मंत्रिपरिषद में भारत के राष्ट्रपति की भूमिका

भारत में मंत्रिपरिषद के संबंध में च्तमेपकमदज व िप्दकपं की कुछ प्रमुख भूमिकाएँ इस प्रकार हैं:—

- प्रधान मंत्री की नियुक्ति:— चुनाव के बाद राष्ट्रपति उस राजनीतिक दल या गठबंधन के नेता को प्रधान मंत्री के रूप में नियुक्त करता है जो लोकसभा में बहुमत लेकर आता है।
- मंत्रियों की नियुक्ति ये प्रधानमंत्री की सलाह लेकर मंत्रिपरिषद के सभी मंत्रियों को नियुक्त करते है और साथ ही सभी मंत्रियों को उनकी जिम्मेदारी संभालने से पहले पद और गोपनीयता की शपथ दिलाते हैं।
- मंत्रियों की बर्खास्तगी:— इनके पास प्रधानमंत्री की सलाह पर मंत्रियों को मंत्रिपरिषद से बर्खास्त करने का भी अधिकार प्राप्त होता है।

- मंत्रिपरिषद की बर्खास्तगीः– अगर किसी परिस्थितियों में सरकार लोकसभा में अपना बहुमत साबित नहीं कर पाती तो राष्ट्रपति पूरी मंत्रिपरिषद को भी खत्म कर सकते है। इस प्रकार का कार्य लोकसभा में सरकार के खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव पारित होने के बाद देखने को मिलता है।
- विधेयकों पर स्वीकृति देनाः– संसद के दोनों सदनों लोकसभा व राज्य सभा द्वारा विधेयक पारित होने के बाद इसे भारत के प्रधानमंत्री के पास सहमति के लिए भेजा जाता है। राष्ट्रपति, मंत्रिपरिषद की सलाह पर विचार करने के बाद किसी भी विधेयक को अपनी सहमति दे सकते है या इस पर रोक भी लगा सकते है।

इनके पास पुनर्विचार के लिए एक विधेयक वापस करने की शक्ति भी होती है, जिसे वीटो पावर के रूप में भी जाना जाता है।

न्यायाधीशों की नियुक्ति में राष्ट्रपति की भूमिका

न्यायाधीशों की नियुक्ति में राष्ट्रपति की भूमिका बड़ी भूमिका होती है। क्योंकि न्यायाधीश ऐसे होने चाहिए जो देश की न्यायिक प्रक्रिया को अच्छे से संभाल सके व देश के सभी लोगों को समान न्याय का अधिकार प्रदान करवा सके।

कुल मिलाकर न्यायाधीशों की नियुक्ति में राष्ट्रपति की भूमिका न्यायपालिका को आकार देने में मदद करती है और कानूनी प्रणाली पर इसका स्थायी प्रभाव पड़ता है, क्योंकि न्यायाधीश लंबे समय तक सेवा करते हैं और लोगों के हितों व अधिकारों के लिए निर्णय लेते हैं।

सशस्त्र बलों के सर्वोच्च कमांडर के रूप में राष्ट्रपति की भूमिका

- कुल मिलाकर सैन्य कमानः– राष्ट्रपति सेना के पदों के अनुसार भी सबसे बड़े पद पर होते है, और भारतीय थल सेना, नौसेना, वायु सेना की कमान को भी औपचारिक रुप से संभालते है।
- प्रमुखों की नियुक्तिः– इनके द्वारा ही भारतीय थल सेना, नौसेना और वायु सेना के प्रमुखों की नियुक्ति की जाती है। इनके द्वारा ही चीफ ऑफ डिफेंस स्टाफ कमेटी के अध्यक्ष की नियुक्ति भी करते हैं, जो तीनों सेनाओं पर नजर रखने का कार्य करते है।
- रक्षा नीतिः– देश की सुरक्षा के लिए और सभी सैन्य तैयारियों के लिए

प्रधान मंत्री व रक्षा मंत्रालय के द्वारा इनको नियमित जानकारी प्राप्त होती रहती है।

- सैन्य सम्मानः— राष्ट्रपति के पास सशस्त्र बलों के जवानों व अधिकारियों के लिए वीरता और बहादुरी के कार्यों के लिए परमवीर चक्र, महावीर चक्र, और वीर चक्र जैसे सैन्य सम्मान व पुरस्कार दिए जाते है।

7

भारत के प्रधानमंत्री तथा उसकी प्रमुख शक्तियां

भारत गणराज्य के प्रधानमन्त्री (सामान्य वर्तनी प्रधानमंत्री) का पद भारतीय संघ के शासन प्रमुख का पद है। भारतीय संविधान के अनुसार, प्रधानमन्त्री केंद्र सरकार के मंत्रिपरिषद् का प्रमुख और राष्ट्रपति का मुख्य सलाहकार होता है। वह भारत सरकार के कार्यपालिका का प्रमुख होता है और सरकार के कार्यों के प्रति संसद को जवाबदेह होता है।

भारत की संसदीय राजनैतिक प्रणाली में राष्ट्रप्रमुख और शासनप्रमुख के पद को पूर्णतः विभक्त रखा गया है। सैद्धांतिकरूप में संविधान भारत के राष्ट्रपति को देश का राष्ट्रप्रमुख घोषित करता है और सैद्धांतिकरूप में, शासनतंत्र की सारी शक्तियों को राष्ट्रपति निहित करता है। तथा संविधान यह भी निर्दिष्ट करता है कि राष्ट्रपति इन अधिकारों का प्रयोग अपने अधीनस्थ अधिकारियों की सलाह पर करेगा।

संविधान द्वारा राष्ट्रपति के सारे कार्यकारी अधिकारों को प्रयोग करने की शक्ति, लोकतांत्रिक रूप से निर्वाचित, प्रधानमन्त्री को दी गयी है। संविधान अपने भाग 5 के विभिन्न अनुच्छेदों में प्रधानमन्त्रीपद के संवैधानिक अधिकारों और कर्तव्यों को निर्धारित करता है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 74 में स्पष्ट रूप से मंत्रिपरिषद की अध्यक्षता तथा संचालन हेतु प्रधानमन्त्री की उपस्थिति को आवश्यक माना गया है। उसकी

मृत्यु या पदत्याग की दशा मे समस्त परिषद को पद छोड़ना पड़ता है। वह स्वेच्छा से ही मंत्रीपरिषद का गठन करता है। राष्ट्रपति मंत्रिगण की नियुक्ति उसकी सलाह से ही करते है। मंत्री गण के विभाग का निर्धारण भी वही करता है।

कैबिनेट के कार्य का निर्धारण भी वही करता है। देश के प्रशासन को निर्देश भी वही देता है तथा सभी नीतिगत निर्णय भी वही लेता है। राष्ट्रपति तथा मंत्रीपरिषद के मध्य संपर्कसूत्र भी वही है। मंत्रिपरिषद का प्रधान प्रवक्ता भी वही है। वह सत्तापक्ष के नाम से लड़ी जाने वाली संसदीय बहसों का नेतृत्व करता है। संसद मे मंत्रिपरिषद के पक्ष मे लड़ी जा रही किसी भी बहस में वह भाग ले सकता है। मन्त्रीगण के मध्य समन्वय भी वही करता है। वह किसी भी मंत्रालय से कोई भी सूचना आवश्यकतानुसार मंगवा सकता है।

प्रधानमन्त्री, लोकसभा में बहुमत–धारी दल का नेता होता है, और उसकी नियुक्ति भारत के राष्ट्रपति द्वारा लोकसभा में बहुमत सिद्ध करने पर होती है। इस पद पर किसी प्रकार की समय–सीमा निर्धारित नहीं की गई है परंतु एक व्यक्ति इस पद पर केवल तब तक रह सकता है जबतक लोकसभा में बहुमत उसके पक्ष में हो।

संविधान, विशेष रूप से, प्रधानमन्त्री को केंद्रीय मंत्रिमण्डल पर पूर्ण नियंत्रण प्रदान करता है। इस पद के पदाधिकारी को सरकारी तंत्र पर दी गयी अत्यधिक नियंत्रणात्मक शक्ति, प्रधानमन्त्री को भारतीय गणराज्य का सबसे शक्तिशाली और प्रभावशाली व्यक्ति बनाती है।

विश्व की सातवीं सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था, दूसरी सबसे बड़ी जनसंख्या, सबसे बड़े लोकतंत्र और विश्व की तीसरी सबसे बड़ी सैन्य बलों समेत एक परमाणु–शस्त्र राज्य के नेता होने के कारण भारतीय प्रधानमन्त्री को विश्व के सबसे शक्तिशाली और प्रभावशाली व्यक्तियों में गिना जाता है।

वर्ष 2010 में फोर्ब्स पत्रिका ने अपनी, विश्व के सबसे शक्तिशाली लोगों की, सूची में तत्कालीन प्रधानमन्त्री मनमोहन सिंह को 18वीं स्थान पर रखा था, तथा 2012 और 2013 में उन्है। क्रमशः 19वें और 28वें स्थान पर रखा था। उनके उत्तराधिकारी, नरेंद्र मोदी को वर्ष 2014 में 15वें स्थान पर तथा वर्ष 2015 में विश्व का 6वाँ सबसे शक्तिशाली व्यक्ति नामित किया था।

इस पद की स्थापना, वर्त्तमान कर्तव्यों और शक्तियों के साथ, 26 जनवरी

1947 में, संविधान के परवर्तन के साथ हुई थी। उस समय से वर्त्तमान समय तक, इस पद पर कुल १५ पदाधिकारियों ने अपनी सेवा दी है।

इस पद पर नियुक्त होने वाले पहले पदाधिकारी जवाहरलाल नेहरू थे जबकि भारत के वर्तमान प्रधानमन्त्री नरेंद्र मोदी है।, जिन्है। 26 मई 2014 को इस पद पर नियुक्त किया गया था।

संवैधानिक पद व व्युत्पत्ति

भारत के संविधान–निर्माताओं ने भारतीय राजनैतिक प्रणाली को वेस्ट्मिन्स्टर प्रणाली से प्रभावित होकर एक संसदीय गणराज्य का रूप दिया था, जिसमें राष्ट्रप्रमुख तथा शासनप्रमुख के पदों को पूर्णतः पृथक रखा गया था।

भारतीय राजनैतिक प्रणाली में प्रधानमन्त्री का पद संविधान द्वारा स्थापित शासनप्रमुख का पद है, जिसपर सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार के आधार पर प्रजातान्त्रिक रूप से निर्वाचित व्यक्ति को नियुक्त किया जाता है। वहीं भारत के राष्ट्रपति का पद भारत गणराज्य के राष्ट्रप्रमुख का पद है, जिन्है। संसद द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित किया जाता है।

प्रधानमन्त्री का पद निःसंदेह भारतीय राजनैतिक प्रणाली का सबसे शक्तिशाली एवं वर्चस्वपूर्ण पद है। संघीय सरकार तथा केंद्रीय मंत्रिमण्डल की सारी गतिविधि ायों व नीतियों पर अंत्यतः नियंत्रण प्रधानमन्त्री के पास ही होता है। केंद्रीय मंत्रियों की नियुक्ति व निष्कासन भी अंत्यतः प्रधानमन्त्री ही करते है।

हालाँकि, मंत्रियों की नियुक्ति, निष्कासन व अन्य ऐसे कार्य प्रधानमन्त्री स्वयं नहीं कर सकते हैं। मंत्रियों की नियुक्ति व निष्कासन राष्ट्रपति द्वारा प्रधानमन्त्री के सलाह पर होता है। भारतीय संविधान क्रमशः ऐसे कई विधान प्रेषित करता है, जिनके द्वारा वैधिक रूप से यह सुनिश्चित किया गया है कि सामान्य (गैर–आपातकालीन) हालातों में, कार्यपालिका के मामले में राष्ट्रपति पर केवल नाममात्र शक्तियाँ निहित हों, जबकि वास्तविक शक्तियाँ प्रधानमन्त्री के हाथों में हो। संविधान ने प्रधानमन्त्री और राष्ट्रपति की शक्तियों को भाग 5 के विभिन्न अनुच्छेदों में कुछ इस प्रकार अंकित किया गया है।

संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित होगी और वह इसका प्रयोग इस संविधान के अनुसार स्वयं या अपने अधीनस्थ अधिकारियों के द्वारा करेगा।

–पंचम् भाग, 53वीं अनुच्छेद(1)

राष्ट्रपति को सहायता और सलाह देने के लिए एक मंत्रि–परिषद होगी जिसका प्रधान, प्रधानमन्त्री होगा और राष्ट्रपति अपने कृत्यों का प्रयोग करने में ऐसी सलाह के अनुसार कार्य करेगा, परंतु राष्ट्रपति मंत्रि–परिषद से ऐसी सलाह पर साधारणतया या अन्यथा पुनर्विचार करने की अपेक्षा कर सकेगा और राष्ट्रपति ऐसे पुनर्विचार के पश्चात दी गई सलाह के अनुसार कार्य करेगा।

–पंचम् भाग, 74वीं अनुछेद(1)

प्रधानमन्त्री की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा और अन्य मंत्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री की सलाह पर करेगा।

–पंचम् भाग, 75वीं अनुछेद(1)

नियुक्ति

साधारणतः प्रधानमन्त्री को संसदीय आम चुनाव के परिणाम के आधार पर राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाता है। प्रधानमन्त्री, लोकसभा में बहुमत–धारी दल (या गठबंधन) के नेता होते है। हालाँकि, प्रधानमन्त्री का स्वयं लोकसभा सांसद होना अनिवार्य नहीं है परंतु उन्है। लोकसभा में बहुमत सिद्ध करना होता है और नियुक्ति के छह महीनों के भीतर ही संसद का सदस्य बनना पड़ता है। प्रधानमन्त्री संसद के दोनों सदनों में से किसी भी एक सदन के सदस्य हो सकते है।

ऐतिहासिक तौर पर ऐसे कई प्रधानमन्त्री हुए है।, जोकि राज्यसभा– सांसद थे। 1966 में इंदिरा गांधी, देवगौड़ा (1996) और हाल ही में मनमोहन सिंह (2004,2009), राज्यसभा–सांसद थे।

प्रत्येक चुनाव पश्चात्, नवीन सभा की बैठक में बहुमत दल के नेता के चुनाव के बाद, राष्ट्रपति, बहुमत–धारी दल के नेता को प्रधानमन्त्री बनने हेतु आमंत्रित करते है।, आमंत्रण स्वीकार करने के पश्चात, संबंधित व्यक्ति को लोकसभा में मतदान द्वारा विश्वासमत प्राप्त करना होता है। तत्पश्चात् विश्वासमत–प्राप्ति की आदेश को राष्ट्रपति तक पहुँचाया जाता है, जिसके बाद एक समारोह में प्रधानमन्त्री तथा अन्य मंत्रियों को पद की शपथ दिलाई जाती है और उन्है। प्रधानमन्त्री नियुक्त किया जाता है।

यदि कोई एक दल या गठबंधन, लोकसभा में बहुमत प्राप्त करने में अक्षम

होता है, तो, यह पूर्णतः महामहिम राष्ट्रपति के विवेक पर निर्भर होता है कि वे किस व्यक्ति को प्रधानमन्त्रीपद प्राप्त करने हेतु आमंत्रित करे। ऐसी स्थिति को त्रिशंकु सभा की स्थिति कहा जाता है।

त्रिशंकु सभा की स्थिति में राष्ट्रपति साधारणतः सबसे बड़े दल के नेता को निम्नसदन में बहुमत सिद्ध करने हेतु आमंत्रित करते है (हालाँकि संवैधानिक तौर पर वे इस विषय में अपने पसंद के किसी भी व्यक्ति को आमंत्रित करने हेतु पूर्णतः स्वतंत्र है।)।

निमंत्रण स्वीकार करने वाले व्यक्ति का लोकसभा में विश्वासमत सिद्ध करना अनिवार्य है और उसके बाद ही वह व्यक्ति प्रधानमन्त्री नियुक्त किया जा सकता है। ऐतिहासिक तौर पर, इस विशेषाधिकार का प्रयोग अनेक अवसरों पर विभिन्न राष्ट्रपतिगण कर चुके है। वर्ष 1977 में राष्ट्रपति नीलम संजीव रेड्डी ने प्रधानमन्त्री मोरारजी देसाई के इस्तीफे के पश्चात्, चौधरी चरण सिंह को इसी विशेषाधिकार का प्रयोग कर, प्रधानमन्त्री नियुक्त किया था।

इसके अलावा भी इस विशेषाधिकार का उपयोग कर, राष्ट्रपतिगण ने 1989 में राजीव गांधी और विश्वनाथ प्रताप सिंह, 1991 में नरसिंह राव तथा 1996 और 1998 में अटल बिहारी वाजपेयी को प्रधानमंत्रिपद पर नियुक्त करने के लिए किया है। कैबिनेट, प्रधानमन्त्री द्वारा चयनित और राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त मंत्रियों से बना होता है।

पात्रता

भारतीय संविधान, प्रधानमंत्री पद हेतु किसी प्रकार की विशेष अर्हताएँ निर्दिष्ट नहीं करता है। परंतु एक आवश्यक्ता जरूर निर्धारित की गई है। प्रधानमन्त्री के पास लोकसभा अथवा राज्यसभा की सदस्यता होनी चाहिए, और उनके पास लोकसभा में बहुमत का समर्थन होना चाहिये।

यदि नियुक्ति के समय पात्र, भारतीय संसद के दो सदनों में से किसी भी सदन का सदस्य नहीं होता है तो नियुक्ति के 6 महीनों के मध्य ही उन्है। संसद की सदस्यता प्राप्त करना अनिवार्य है अन्यथा उनका प्रधानमंत्रित्व खारिज हो जायेगा। अतः प्रधानमंत्रित्व के दावेदार के पास, एक सांसद होने की सारी अर्हताएँ होनी चाहिये। भारतीय संविधान के पंचम् भाग का 84वाँ अनुच्छेद, एक सांसद की अर्हताओं को निर्दिष्ट करता है, उसके अनुसार।

कोई व्यक्ति संसद— के किसी स्थान को भरने के लिए चुने जाने के लिए अर्हित तभी होगा जब वह भारत का नागरिक है और निर्वाचन आयोग द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत किसी व्यक्ति के समक्ष तीसरी अनुसूची में इस प्रयोजन के लिए दिए गए प्रारूप के अनुसार शपथ लेता है या प्रतिज्ञान करता है और उस पर अपने हस्ताक्षर करता है।

वह राज्य सभा में स्थान के लिए कम से कम तीस वर्ष की आयु का और लोकसभा में स्थान के लिए कम से कम पच्चीस वर्ष की आयु का है और उसके पास ऐसी अन्य अर्हताएँ है। जो संसद द्वारा बनाई गई किसी विधि द्वारा या उसके अधीन इस निमित्त विहित की जाएँ।

जैसा कि तीसरे बिंदू में विनिर्दिष्ट है, पात्र को संसद द्वारा भविष्य में पारित पात्रता के किसी भी योगयता पर खरा उतारना होगा तथा क्योंकि प्रधानमन्त्री का सांसद होना अनिवार्य है, अतः प्रधानमंत्रित्व के पात्र को लोकसभा या राज्यसभा का सदस्य होने योग्य होने हेतु, कुछ अन्य अर्हताओं पर भी खरा उतरना होता है, जिनमें उसका विकृत चरित्र वाला व्यक्ति या दिवालिया घोषित ना होना, स्वेच्छा से किसी विदेशी राज्य की नागरिकता प्राप्त कर लेना, किसी न्यायालय द्वारा उसका निर्वाचन शून्य घोषित कर दिया जाना, तथा राष्ट्रपति या राज्यपाल नियुक्त होना शामिल है।

साथ ही, पात्र का, केंद्रीय सरकार, किसी भी राज्य सरकार अथवा पूर्वकथित किसी भी सरकार के अधीन किसी भी कार्यालय तथा प्रशासनिक या गैर—प्रशासनिक निकाय की सेवा में किसी भी लाभकारी पद का कर्मचारी नहीं होना चाहिए। साथ ही सदन से प्रस्ताव—स्वीकृत निष्कासन से भी पात्र की सदस्यता समाप्त हो जाती है।

नियुक्ती के पश्चात, इनमें से, पूर्वकथित किसी भी अर्हताओं पर, प्रधानमंत्री की अयोग्यता, किसी विधिक न्यायालय में सिद्ध की जाती है, तो, उस व्यक्ति का निर्वाचन शून्य घोषित कर दिया जाता है, और उसे प्रधानमंत्री के पद से निष्कासित कर दिया जाता है।

कार्यपद की शपथ

प्रधानमन्त्री को पद की शपथ राष्ट्रपति द्वारा दिलाई जाती है। पद पर नियुक्ति हेतु, भावी पदाधिकारी को दो शपथ लेने की अनिवार्यता है।

ये दोनों शपथ भारतीय संविधान की तीसरी अनुसूची में विनिर्दिष्ट है। (अनुच्छेद 75 (4), 99, 124 (6), 148 (2), 164 (3), 188 और 219)।

शपथ या प्रतिज्ञान के प्ररूप

मंत्रीपद की शपथ का प्ररूप

"मैं, अमुक,, ईश्वर की शपथ लेता हूँ सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान करता हूँ कि मैं विधि द्वारा स्थापित भारत के संविधान के प्रति सच्ची श्रद्धा और निष्ठा रखूँगा, (संविधान (सोलहवाँ संशोधन) अधिनियम, 1963 की धारा 5 द्वारा अंतःस्थापित।) मैं भारत की प्रभुता और अखंडता अक्षुण्ण रखूँगा, मैं संघ के प्रधानमन्त्री के रूप में अपने कर्तव्यों का श्रद्धापूर्वक और शुद्ध अंतःकरण से निर्वहन करूँगा तथा मैं भय या पक्षपात, अनुराग या द्वेष के बिना, सभी प्रकार के लोगों के प्रति संविधान और विधि के अनुसार न्याय करूँगा।"

गोपनीयता की शपथ का प्ररूप

"मैं, अमुक, ईश्वर की शपथ लेता हूँ सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान करता हूँ कि जो विषय संघ के प्रधानमन्त्री के रूप में मेरे विचार के लिए लाया जाएगा अथवा मुझे ज्ञात होगा उसे किसी व्यक्ति या व्यक्तियों को, तब के सिवाय जबकि ऐसे मंत्री के रूप में अपने कर्तव्यों के सम्यक् निर्वहन के लिए ऐसा करना अपेक्षित हो, मैं प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से संसूचित या प्रकट नहीं करूँगा।"

कार्यकाल व निलंबन

सैद्धान्तिक रूप से, पदस्थ प्रधानमन्त्री, राष्ट्रपति के प्रसादपर्यंत, अपने पद पर बना रहता है। राष्ट्रपतिपद के विपरीत, प्रधानमन्त्री के कार्यकाल के लिए कोई काल–सीमा निर्धारित नहीं की गई है। अतः एक पदस्थ प्रधानमन्त्री अनिश्चित काल तक प्रधानमन्त्रीपद पर बना रह सकता है, बशर्ते कि राष्ट्रपति को उसपर विश्वास हो।

इसका वास्तविक अर्थ यह है कि एक व्यक्ति केवल तब तक प्रधानमन्त्री पद पर बना रह सकता है, जबतक लोकसभा में बहुमत का विश्वास उसके पक्ष में है। बहरहाल, लोकसभा का पूरा कार्यकाल 5 वर्ष होता है, जिसके बाद नए चुनाव कराये जाते है।, और नवीन सभा पुनः प्रधानमन्त्री के पक्ष में विश्वासमत पारित करती है, यदि नव–निर्वाचित सभा प्रधानमन्त्री में अविश्वास घोषित कर देती है तो

फिर प्रधानमन्त्री का कार्यकाल समाप्त हो जाता है। अतः यह कहा जा सकता है कि प्रधानमन्त्री का एक पूरा कार्यकाल 5 वर्ष का होता है, जिसके बाद उसकी पुनःसमीक्षा होती है।

बहरहाल, प्रधानमन्त्री का कार्यकाल 5 वर्षों से पूर्व ही समाप्त हो सकता है, यदि किसी कारणवश, लोकसभा सरकार के विरोध में अविश्वास मत पारित करे अथवा यदि किसी कारणवश, प्रधानमन्त्री की संसद की सदस्यता शून्य घोषित हो जाए तो प्रधानमन्त्री, किसी भी समय, अपने पद का त्याग, राष्ट्रपति को एक लिखित त्यागपत्र सौंप के कर सकते है। प्रधानमन्त्री मोरारजी देसाई देश के पहले प्रधानमन्त्री थे, जिन्होंने कार्यकाल के बीच अपना पद त्याग दिया था। प्रधानमन्त्री के कार्यकाल पर ना ही किसी प्रकार की समय–सीमा है ना कोई आयु सीमा निर्दिष्ट की गई है।

कार्य व शक्तियाँ

भारतीय संविधान के अनुच्छेद ७४ में स्पष्ट रूप से मंत्रिपरिषद की अध्यक्षता तथा संचालन हेतु प्रधानमन्त्री की उपस्थिति आवश्यक मानता है। उसकी मृत्यु या त्यागपत्र की दशा मे समस्त परिषद को पद छोडना पडता है। वह अकेले ही मंत्री परिषद का गठन करता है। राष्ट्रपति मंत्रिगण की नियुक्ति उसकी सलाह से ही करते है। मंत्री गण के विभाग का निर्धारण भी वही करता है।

कैबिनेट के कार्य का निर्धारण भी वही करता है। देश के प्रशासन को निर्देश भी वही देता है। सभी नीतिगत निर्णय वही लेता है। राष्ट्रपति तथा मंत्री परिषद के मध्यसंपर्क सूत्र भी वही है।

मंत्रिपरिषद का प्रधान प्रवक्ता भी वही है। वह परिषद के नाम से लड़ी जाने वाली संसदीय बहसों का नेतृत्व करता है। संसद मे परिषद के पक्ष मे लड़ी जा रही किसी भी बहस मे वह भाग ले सकता है। मन्त्री गण के मध्य समन्वय भी वही करता है। वह किसी भी मंत्रालय से कोई भी सूचना मंगवा सकता है। इन सब कारणॉ के चलते प्रधानमन्त्री को भारत का सबसे महत्त्वपूर्ण राजनैतिक व्यक्तित्व माना जाता है।

कार्यकारी शक्तियाँ

भारतीय प्रधानमन्त्रीपद के वर्चस्व व महत्व का सबसे अहम कारण है, उसके पदाधिकारी को प्रदान की गई कार्यकारी शक्तियाँ। संविधान का अनुच्छेद 74,

प्रधानमन्त्री के पद को स्थापित करता है, एवं यह निर्दिष्ट करता है कि एक मंत्रीपरिषद् होगी जिसका मुखिया प्रधानमन्त्री होगा, जो भारत के राष्ट्रपति को सलाह और सहायता प्रदान करेंगे। तथा अनुच्छेद 75 यह स्थापित करता है कि मंत्रियों की नियुक्ति, राष्ट्रपति द्वारा प्रधानमन्त्री की सलाह के अनुसार की जायेगी, एवं मंत्री को विभिन्न कार्यभार भी राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री की सलाह के अनुसार ही देंगे। अतः संविधान यह निर्दिष्ट करता है की, जहाँ संवैधानिक कार्यकारी अधिकार भारत के राष्ट्रपति के पास है, परंतु क्योंकि इन संबंधों में भारत के राष्ट्रपति केवल प्रधानमन्त्री की सलाहनुसार कार्य करते है।, अतः वास्तविक रूप से, इन कार्यकारी अधिकारों का प्रयोग प्रधानमन्त्री अपनी इच्छानुसार करते है। इन विधानों द्वारा संविधान यह स्थापित करता है, की भारत के राष्ट्रप्रमुख होने के नाते, राष्ट्रपति पर निहित सारे कार्यकारी अधिकार, अप्रत्यक्ष रूप से, प्रधानमन्त्री ही किया करेंगे, तथा संपूर्ण मंत्रिपरिषद् के प्रधान होंगे तथा अनुच्छेद 75 द्वारा मंत्रिपरिषद् का गठन, मंत्रियों की नियुक्ति एवं उनका कार्यभार सौंपना भी प्रधानमन्त्री की इच्छा पर छोड़ दिया गया है, बल्कि मंत्रियों और मंत्रालयों के संबंध में संविधान, प्रधानमन्त्री को पूरी खुली छूट प्रदान करता है।

प्रधानमन्त्री, अपने मंत्रिमण्डल में किसी भी व्यक्ति को शामिल कर सकते है, निकाल सकते है, नियुक्त कर सकते हैं। या निलंबित करवा सकते है। क्योंकि मंत्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा केवल प्रधानमन्त्री की सलाह पर होती है, अतः इसका अर्थ यह है की केंद्रीय मंत्रिपरिषद् वास्तविक रूप से प्रधानमन्त्री की पसंद के लोगों द्वारा निर्मित होती है, जिसमें वे अपनी पसंदानुसार कभी भी फेर–बदल कर सकते है। साथ ही मंत्रियों को विभिन्न कार्यभार प्रदान करना भी पूर्णतः प्रधानमन्त्री की इच्छा पर निर्भर करता हैं वे अपने मंत्रियों में से किसी को भी कोई भी मंत्रालय या कार्यभार सौंप सकती हैं।, छीन सकते है। या दूसरा कोई कार्यभार मंत्रालय सौंप सकते है।

इन मामलो में संबंधित मंत्रियों से सलाह–मशवरा करने की, या उनकी अनुमति प्राप्त करने की, प्रधानमन्त्री पर किसी भी प्रकार की कोई संवैधानिक बाध यता नहीं है। बल्कि मंत्रियों व मंत्रालयों के विषय में पूर्वकथित किसी भी मामले में संबंधित मंत्री या मंत्रियों की सलाह या अनुमति प्राप्त करने की, प्रधानमन्त्री पर किसी भी प्रकार की संवैधानिक बाध्यता नहीं है। वे कभी भी अपनी इच्छानुसार, किसी भी मंत्री को मंत्रिपद से इस्तीफा देने के लिए भी कह सकते हैं, और यदि वह मंत्री, इस्तीफा देने से इंकार कर देता है, तो वे राष्ट्रपति से कह कर उसे पद

से निलंबित भी करवा सकते है।

प्रधानमन्त्री नरेंद्र मोदी की मंत्रिमण्डलीय बैठक की तस्वीर,, मंत्रियों की नियुक्ति एवं मंत्रालयों के आवण्टन के अलावा, मंत्रिमण्डलीय सभाएँ, कैबिनेट की गतिविधियाँ और सरकार की नीतियों पर भी प्रधानमन्त्री का पूरा नियंत्रण होता है। प्रधानमन्त्री, मंत्रिपरिषद् के संवैधानिक प्रमुख एवं नेता होते है।

वे संसद एवं अन्य मंचों पर मंत्रिपरिषद् का प्रतिनिधित्व करते हैं। वे मंत्रिमण्डलीय सभाओं की अध्यक्षता करते है।, तथा इन बैठकों की कार्यसूची, तथा चर्चा के अन्य विषय वो ही तय करते है। बल्कि कैबिनेट बैठकों में उठने वाले सारे मामले व विषयसूची, प्रधानमन्त्री की ही स्वीकृति व सहमति से निर्धारित किये जाते है। कैबिनेट की बैठकों में उठने वाले विभिन्न प्रस्तावों को मंजूर या नामंजूर करना, प्रधानमन्त्री की इच्छा पर होता है। हालाँकि, चर्चा करने और अपने निजी सुझाव व प्रस्तावों को बैठक के समक्ष रखने की स्वतंत्रता हर मंत्री को है, परंतु अंततः वही प्रस्ताव या निर्णय लिया जाता है, जिसपर प्रधानमन्त्री की सहमति हो और निर्णय पारित किये जाने के पश्चात् उसे पूरे मंत्रिपरिषद का अंतिम निर्णय माना जाता है, और सभी मंत्रियों को प्रधानमन्त्री के उस निर्णय के साथ चलना होता है। अतः यह कहा जा सकता है कि संवैधानिक रूप से, केंद्रीय मंत्रिमण्डल पर प्रधानमन्त्री को पूर्ण नियंत्रण व चुनौतीहीन प्रभुत्व हासिल है।

नियंत्रण के मामले में प्रधानमन्त्री, मंत्रिपरिषद् का सर्वेसर्वा होता है, और उसके इस्तीफे से पूरी सरकार गिर जाती है, अर्थात् सारे मंत्रियों का मंत्रित्व समाप्त हो जाता है। मंत्रिपरिषद् की अध्यक्षता के अलावा संविधान, प्रधानमन्त्री पर एक और खास विशेषाधिकार निहित करता है, यह विशेषाधिकार है मंत्रिपरिषद् और राष्ट्रपति के बीच का मध्यसंपर्क सूत्र होना। यह विशेषाधिकार केवल प्रधानमन्त्री को दिया गया है, जिसके माध्यम से प्रधानमन्त्री समय–समय पर, राष्ट्रपति को मंत्रीसभा में लिए जाने वाले निर्णय और चर्चाओं से संबंधित जानकारी से राष्ट्रपति को अधिसूचित कराते रहते है।

प्रधानमन्त्री के अलावा कोई भी अन्य मंत्री, स्वेच्छा से मंत्रीसभा में चर्चित किसी भी विषय को राष्ट्रपति के समक्ष उद्घाटित नहीं कर सकता है। यह विशेषाधिकार का महत्व व अर्थ यह है की मंत्रिमण्डलीय सभाओं में चर्चित विषयों में से किन जानकारियों को गोपनीय रखना है, एवं किन जानकारियों को दुनिया के सामने प्रस्तुत करना है, यह तय करने का अधिकार भी प्रधानमन्त्री के पास है।

प्रशासनिक शक्तियाँ

प्रधानमन्त्री, राज्य के विभिन्न अंगों के मुख्य प्रबंधक के रूप में कार्य करते हैं, जिसका कार्य, राज्य के सरे विभागों व अंगों से, अपनी इच्छानुसार कार्य करवाना है। सरकार के विभिन्न विभागों और मंत्रालयों के बीच समन्वय बनाना, और कैबिनेट द्वारा लिए गए निर्णयों को कार्यान्वित करवाना तथा विभिन्न विभागों को निर्देशित करना भी उनका काम है। मंत्रालयों और विभागों के बीच के प्रशासनिक मतभेद सुलझना और अंतिम निर्णय लेना भी उनका काम है।

सरकारी कार्यों के कार्यान्वयन के अलावा भी, सरकारी तंत्र पर प्रधानमन्त्री का अत्यधिक प्रभाव और पकड़ होता है। शासन व सरकार के प्रमुख होने के नाते, कार्यकारिणी की तमाम नियुक्तियाँ वास्तविक तौरपर प्रधानमन्त्री द्वारा की जाती है। सारे उच्चस्तरीय अधिकारी व पदाधिकारी प्रधानमन्त्री, अपने पसंद के ही नियुक्त करते है।

इन नियुक्तियों में, उच्च–सलाहकारों तथा सरकारी मंत्रालयों और कार्यालयों के उच्चाधिकारी समेत, विभिन्न राज्यों के राज्यपाल, महान्यायवादी, महालेखापरीक्षक, लोक सेवा आयोग के अधिपति, व अन्य सदस्य, विभिन्न देशों के राजदूत, वाणिज्यदूत इत्यादि, सब शामिल है। यह सारे उच्चस्तरीय नियुक्तियाँ, भारत के राष्ट्रपति द्वारा, प्रधानमन्त्री की सलाह पर किये जाते है।

विधानमण्डलीय शक्तियाँ

सरकार और मंत्रिपरिषद के प्रमुख होने के नाते, प्रधानमन्त्री लोकसभा में बहुमत और सत्तापक्ष के नेता और प्रमुख प्रतिनिधि है। इस सन्दर्भ में, सदन में सरकार और सत्तापक्ष का प्रतिनिधित्व करना प्रधानमन्त्री का कर्त्व्य माना जाता है। साथ ही यह आशा की जाती है कि सदन में सरकार द्वारा लिए गए महत्वपूर्ण विधेयक और घोषणाएँ प्रधानमन्त्री करेंगे तथा उन महत्वपूर्ण निर्णयों के विषय में सत्तापक्ष की तरफ से प्रधानमन्त्री उत्तर देंगे।

लोकसभा अध्यक्ष का चुनाव, निर्वाचन द्वारा होता है, अतः साधारणतः, सभापति भी बहुमत दल का होता है। अतः, बहुमत दाल के नेता होने के नाते, सभापति के जरिये, प्रधानमन्त्री, लोकसभा की कार्रवाई को भी सीमितरूप से प्रभावित करने की क्षमता रखते है।, क्योंकि सभापति, सभा का अधिष्ठाता होता है, और सदन में चर्चा की विषयसूची भी सभापति ही निर्धारित करता है, हालाँकि सदन की कार्रवाई को

अधिक हद तक प्रभावित नहीं किया जा सकता है। इन कर्तव्यों के अलावा, संसदीय कार्रवाई को पर प्रधानमन्त्री का सबसे महत्वपूर्ण शक्ति है, लोकसभा सत्र बुलाने और सत्रांत करने की शक्ति। संविधान का अनुच्छेद 85, लोकसभा के सत्र बुलाने और सत्रांत करने का अधिकार, भारत के राष्ट्रपति को देता है, परंतु इस मामले राष्ट्रपति को प्रधानमन्त्री की सलाह के अनुसार कार्य करना पड़ता है। अर्थात् वास्तविकरूपे, लोकसभा का सत्र बुलाना और अंत करना प्रधानमन्त्री के हाथों में होता है। यह अधिकार, निःसंदेह, प्रधानमन्त्री के हाथों में दी गयी सबसे महत्वपूर्ण अधिकार है, जोकि उनको न केवल अपने दल पर, बल्कि विपक्ष के सांसदों की गतिविधियों पर भी सीमित नियंत्रण का अवसर प्रदान करता है।

वैश्विक संबंधों में किरदार

सरकार और देश के नेता होने के नाते, वैश्विक मंच पर भारत का प्रतिनिधित्व करना प्रधानमन्त्री की सबसे महत्वपूर्ण जिम्मेदारियों में से एक है। सरकार और मंत्रिपरिषद् पर अपनी अपार नियंत्रण के कारण, भारतीय राज्य की वैश्विक नीति निर्धारित करने में प्रधानमन्त्री की सबसे अहम भूमिका होती है।

देश की विदेश नीति से संबंधित निर्णय, देश की सामरिक, कूटनीतिक, आर्थिक, वाणिज्यिक इत्यादि आवश्यकताओं के अनुसार आमतौर पर मंत्रिपरिषद् में चर्चा द्वारा निर्धारित की जाती है, जिनमे अंतिम निर्णय प्रधानमन्त्री लेते है।

वैश्विक संबंधों और उनसे जुड़े मामलों में भारत का विदेश मंत्रालय संभालता है, जिसके लिए विदेश मंत्री के नाम से एक स्वतंत्र कैबिनेट मंत्री भी नियुक्त किया जाता रहा है(कई बार प्रधानमन्त्री स्वयं भी विदेश मंत्रालय का प्रभार संभालते है।), परंतु क्योंकि विदेश नीतियाँ, इत्यादि, प्रधानमन्त्री निधारित करते है।, अतः, विदेश मंत्री अंततः प्रधानमन्त्री द्वारा लिए गए निर्णयों और नीतियों को कार्यान्वित करने का काम करता है।

विभिन्न देशों से सामरिक, आर्थिक, कूटनीतिक, वाणिज्यिक और संसाधनिक, इत्यादि संधियाँ और समझौते, तथा उनसे जुड़ी कूटनीतिक बहस और वार्ताओं में प्रधानमन्त्री का किरदार सबसे महत्वपूर्ण होता है, और ऐसी वार्ताओं में वे देश का प्रतिनिधित्व करते है।

विभिन्न देशों के राष्ट्राध्यक्षों व प्रतिनिधिमंडलों का स्वागत–सत्कार करना व उनकी मेजबानी करना भी प्रधानमन्त्री की जिम्मेदार होती है। विदेशी प्रतिनिधियों

की मेजबानी के आलावा, प्रधानमन्त्री, जनप्रतिनिधि व शासनप्रमुख होने के नाते, विदेशों में भारत का प्रतिनिधित्व भी करते है।

वे संयुक्त राष्ट्र संघ, जी–20, ब्रिक्स, सार्क, गुट निरपेक्ष आंदोलन, राष्ट्रमण्डल, इत्यादि जैसे अंतराष्ट्रीय संगठनों में भारत का प्रतिनिधित्व करते है।, और भारत का पक्ष रखते है। अंतराष्ट्रीय मंच पर देश की छवि बनाने, और कूटनीतिक वार्ताओं द्वारा देश के हित की आपूर्ति करने में प्रधानमन्त्री का स्थान बेहद महत्वपूर्ण है।

भारतीय संविधान, राष्ट्रप्रमुख और सर्व सामरिक बलों के अधिपति होने के नाते, किसी अन्य देश से युद्ध व शांति घोषित करने का अधिकार भारत के राष्ट्रपति को देता है, परंतु इसका वास्तविक अधिकार प्रधानमन्त्री को है, क्योंकि राष्ट्रपति इस मामले में प्रधानमन्त्री की सलाह के अनुसार कार्य करने हेतु बाध्य है। युद्ध की घोषणा के अलावा, युद्ध की रणनीति निर्धारित करना तथा सामरिक बलों को नियंत्रित करना भी प्रधानमन्त्री द्वारा ही होता है तथा शांति–घोषणा करना और शांति–समझौता करना भी प्रधानमन्त्री का कर्त्व्य है।

विभिन्न मंत्रालयों/विभागों का प्रभार

भारत सरकार के कुछ विशेष, संवेदनशील एवं उच्चस्तरीय विभाग व मंत्रालय ऐसे है।, जिनकी विशेषता, संवेदनशीलता या अन्य किसी कारणवश प्रधानमन्त्री के अलावा अन्य किसी भी मंत्री को इनका कार्यभार नहीं सौंपा जाता है। इन विभिन्न विभागों के कार्यों के प्रति वे संसद को जवाबदेह है, और आवश्यकता पड़ने पर उन्है। संसद् में पूछे गए प्रश्नो का उत्तर देना पड़ता है। आम तौरपर, प्रधानमन्त्री इन निम्नलिखित विभागों के प्रभारी होते है।–

- कैबिनेट नियुक्ति आयोग
- कार्यकर्मी, जनशिकायत व पेंशन मंत्रालय
- नीति आयोग
- परमाणु ऊर्जा विभाग
- अंतरिक्ष विभाग
- नाभिकीय कमान प्राधिकरण

परंपरागत कर्त्व्य

भारत के प्रधानमन्त्रीपद के राजनैतिक महत्त्व एवं उसके पदाधिकारी की जननायक और राष्ट्रीय नेतृत्वकर्ता की छवि के लिहाज से, प्रधानमन्त्री पद के पदाधिकारी से यह आशा की जाती है, कि वे भारत के जनमानस को भली–भाँति जाने, समझें एवं राष्ट्र को उचित दिशा प्रदान करे।

जनमानस के प्रतिनिधि होने के नाते, महत्वपूर्ण राष्ट्रीय दिवसों और समारोहों में प्रधानमन्त्री के अहम पारंपरिक एवं चिन्हात्मक किरदार रहा है। समय के साथ, प्रधानमन्त्री पर अनेक परंमपरागत कर्त्व्य विकसित हुए है। इन कर्तव्यों में प्रमुख है, स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर प्रतिवर्ष, दिल्ली के लाल किले की प्राचीर से प्रधानमन्त्री का राष्ट्र को संबोधन। स्वतत्रंता पश्चात्, वर्ष 1947 से ही यह परंपरा चली आ रही है, जिसमें, प्रधानमन्त्री, स्वयँ दिल्ली के ऐतिहासिक लाल किले की प्राचीर पर, राष्ट्रीय ध्वज फहराते है। और जनता को संबोधित करते है।

इन भाषणों में अमूमन प्रधानमन्त्रीगण, बीते वर्ष में सरकार की उपलब्धियों को उजागर करते है, तथा आगामी वर्षो में सरकार की कार्यसूची और मनोदशा से लोगों को प्रत्यक्ष रूप से अवगत कराते है। 15 अगस्त, वर्ष 1947 को सर्वप्रथम, भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री, जवाहरलाल नेहरू ने लाल किले की प्राचीर से देश को संबोधित किया था। लाल किले से जनता को संबोधित करने की इस परंपरा को उनहोंने अपने १७ वर्षीया कार्यकाल में प्रतिवर्ष जारी रखा। तत्पश्चात्, उनके द्वारा शुरू की गयी इस परंपरा को उनके प्रत्येक उत्तराधिकारी ने बरकरार रखा है, और यह परंपरा आज तक चली आ रही है।

वर्तमान समय में, प्रधानमन्त्री का भाषण वर्ष के सबसे अहम राजनैतिक घटनों में से एक माना जाता है, जिसमे प्रधानमन्त्री स्वयं प्रत्यक्ष रूप से जनता के समक्ष सरकार की उपलब्धियों और मनोदशा को प्रस्तुत करता है। 15 अगस्त के भाषण के अलावा, प्रतिवर्ष, 26 जनवरी को गणतंत्रता दिवस के दिन, राजपथ पर गणतंत्रता दिवस के समारोह की प्रारंभ से पूर्व, प्रधानमन्त्री, देश के तरफ से, अमर जवान ज्योति पर पुष्पमाला अर्पित कर, भारतीय सुरक्षा बलों के शहीद सैनिकों को श्रद्धांजलि अर्पित करते है।

इस परंपरा की शुरुआत, प्रधानमन्त्री इंदिरा गांधी के शासनकाल के समय हुई थी, जब 1971 की युद्ध में पाकिस्तान की पराजय और बांग्लादेश की मुक्ति के पश्चात् देश की रक्षा के लिए शहीद हुए सैनिकों के उपलक्ष में दिसंबर 1971 को अमर जवान ज्योति को स्थापित किया गया। सर्वप्रथम, इंदिरा गांधी ने अमर जवान ज्योति पर,

शहीद सैनिकों 26 जनवरी 1979 को, २३वें गणतंत्रता दिवस पर पुष्पमाला अर्पित की थी। तत्पश्चात्, प्रतिवर्ष, प्रत्येक प्रधानमन्त्री इस परंपरा को निभा रहे है।

प्रधानमन्त्री कोष

प्रधानमन्त्री, विभिन्न राहत कोषों के अध्यक्ष है।, जिनका उपयोग विभिन्न प्रकार की प्राकृतिक, सामरिक तथा अन्य आपदाओं में आर्थिक सहायता देने के लिए किया जाता है। ये कोष, पूर्णतः सार्वजनिक–अंशदान पर निर्भर होते है। इन्है। सरकार द्वारा किसी प्रकार की वित्तीय सहायता उपलब्ध नहीं कराई जाती है, और इन्है। प्रधानमन्त्री कार्यालय द्वारा एक न्यास की तरह प्रबंधित किया जाता है।

प्रधानमन्त्री राष्ट्रीय राहत कोष

प्रधानमन्त्री राष्ट्रीय राहत कोष जनता के अंशदान से बनी एक न्यास है जिसका प्रबंधन प्रधानमन्त्री अथवा विविध नामित अधिकारियों द्वारा राष्ट्रीय प्रयोजनों के लिए किया जाता है। इस कोष के अध्यक्ष स्वयं प्रधानमन्त्री होते है। इस राहत कोष की धनराशि का इस्तेमाल अब प्रमुखतया बाढ़, चक्रवात और भूकंप आदि जैसी प्राकृतिक आपदाओं में मारे गए लोगों के परिजनों तथा बड़ी दुर्घटनाओं एवं दंगों के पीड़ितों को तत्काल राहत पहुंचाने के लिए किया जाता है।

इसके अलावा हृदय शल्य–चिकित्सा, गुर्दा प्रत्यारोपण, कैंसर आदि के उपचार के लिए भी इस कोष से सहायता दी जाती है। इसे वर्ष 1948 में तत्कालीन प्रधानमन्त्री पंडित जवाहरलाल नेहरू की अपील पर जनता के अंशदान से पाकिस्तान से विस्थापित लोगों की मदद करने के लिए स्थापित किया गया था।

यह कोष केवल जनता के अंशदान से बना है और इसे कोई भी बजटीय सहायता नहीं मिलती है। समग्र निधि का सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में विभिन्न रूपों में निवेश किया जाता है। कोष से धनराशि प्रधानमन्त्री के अनुमोदन से वितरित की जाती है। प्रधानमन्त्री राष्ट्रीय राहत कोष का गठन संसद द्वारा नहीं किया गया है। इस कोष की निधि को आयकर अधिनियम के तहत एक ट्रस्ट के रूप में माना जाता है और इसका प्रबंधन प्रधानमन्त्री अथवा विविध नामित अधिकारियों द्वारा राष्ट्रीय प्रयोजनों के लिए किया जाता है।

इस कोष का संचालन प्रधानमन्त्री कार्यालय, साउथ ब्लॉक, नई दिल्ली से

किया जाता है। प्रधानमन्त्री राष्ट्रीय राहत कोष को आयकर अधिनियम 1961 की धारा 10 और 139 के तहत आयकर रिटर्न भरने से छूट प्राप्त है।

प्रधानमन्त्री, प्रधानमन्त्री राष्ट्रीय राहत कोष के अध्यक्ष है। और अधिकारी कर्मचारी अवैतनिक आधार पर इसके संचालन में उनकी सहायता करते है। प्रधानमन्त्री राष्ट्रीय राहत कोष में किए गए अंशदान को आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 80 (छ) के तहत कर योग्य आय से पूरी तरह छूट हेतु अधिसूचित किया जाता है। प्रधानमन्त्री राष्ट्रीय राहत कोष में किसी व्यक्ति और संस्था से केवल स्वैच्छिक अंशदान ही स्वीकार किए जाते है। सरकार के बजट स्रोतों से अथवा सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के बैलेंस शीटों से मिलने वाले अंशदान स्वीकार नहीं किए जाते है।

प्रधानमन्त्री राष्ट्रीय रक्षा निधि

राष्ट्रीय रक्षा प्रयासों को बढ़ावा देने हेतु नकद एवं वस्तुओं के रूप में प्राप्त स्वैच्छिक दान की जिम्मेदारी लेने और उसके इस्तेमाल पर निर्णय लेने के लिए राष्ट्रीय रक्षा कोष स्थापित किया गया था। इस कोष का इस्तेमाल सशस्त्र बलों तथा अर्द्ध सैनिक बलों के सदस्यों और उनके आश्रितों के कल्याण के लिए किया जाता है।

यह कोष एक कार्यकारिणी समिति के प्रशासनिक नियंत्रण में होता है। इस समिति के अध्यक्ष प्रधानमन्त्री होते है। और रक्षा, वित्त तथा गृहमंत्री इसके सदस्य होते है। वित्तमंत्री इस कोष के कोषपाल होते है। तथा इस विषय को देख रहे प्रधानमन्त्री कार्यालय के संयुक्त सचिव कार्यकारिणी समिति के सचिव होते है। कोष का लेखा भारतीय रिजर्व बैंक में रखा जाता है। यह कोष भी जनता के स्वैच्छिक अंशदान पर पूरी तरह से निर्भर होता है और इसे किसी भी तरह की बजटीय सहायता नहीं मिलती है।

वेतन व पेंशन

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 75 के अनुसार, प्रधानमन्त्री तथा संघ के अन्य मंत्रियों को मिलने वाली प्रतिश्रमक इत्यादि का निर्णय संसद करती है। इस राशि को समय–समय पर संसदीय अधिनियम द्वारा पुनरवृत किया जाता है। मंत्रियो के वेतन से संबंधित मूल राशियों का उल्लेख संविधान की दूसरी अनुसूची के भाग ख में दिया गया था, जिसे बाद में संवैधानिक संशोधन द्वारा हटा दिया गया था। वर्ष

२०१० में जारी की गयी आधिकारिक सूचना में प्रधानमन्त्री कार्यालय ने यह सूचित किया था कि प्रधानमन्त्री की कुल आय उनकी मूल वेतन से अधिक उन्है। प्रदान किये जाने वाले विभिन्न भत्तों के रूप में होता है।

वर्ष 2013 में आए, एक सूचना अधिकार आवेदन के उत्तर में यह स्पष्ट किया गया था कि प्रधानमन्त्री का मूल वेतन 50,000 प्रति माह था, जिसके साथ 3,000 का मासिक, व्यय भत्ता भी प्रदान किया जाता है। इसके अतिरिक्त, प्रधानमन्त्री को 2,000 की दैनिक दर से प्रतिमाह 62,000 का दैनिक भत्ता मुहैया कराया जाता है, साथ ही 45,000 का निर्वाचन क्षेत्र भत्ता भी प्रधानमन्त्री को प्रदान किया जाता है। इन सब भत्तों और राशियों को मिला कर, प्रधानमन्त्री की मासिक आय का कुल मूल्य 1,60,000 प्रतिमाह तथा 20 लाख प्रतिवर्ष है।

अमरीकी पत्रिका, द एकॉनॉमिस्ट की एक रिपोर्ट के अनुसार, पर्चेजिंग पावर प्रॅरिटी के अनुपात के आधार पर भारतीय प्रधानमन्त्री+4106 के समानांतर वेतन प्राप्त करते है। प्रति–व्यक्ति जीडीपी के अनुपात के आधार पर यह आंकड़ा विश्व में सबसे कम है। प्रधानमन्त्री की सेवानिवृत्ति के पश्चात् प्रधानमन्त्री को 20,000 की मासिक पेंशन प्रदान की जाती है एवं सीमित सचिवीय सहायता के साथ, 6,000 का कार्यालय खर्च भी प्रदान किया जाता है।

सुविधाएँ

प्रधानमन्त्री कार्यालय

प्रधानमन्त्री कार्यालय, भारत सरकार का उच्चतम कार्यालय है, जो प्रधानमन्त्री को सचिवीय सहायता प्रदान करता है। इसमें प्रधानमन्त्री के तत्काल कार्यकारिणी एवं सलाहकार शामिल रहते है।, साथ ही संबंधित वरिष्ठाधिकारियों की सहकारिणी भी इस कार्यालय का भाग होते हैं। इस कार्यालय के विभिन्न विभाग होते है। जोकि प्रधानमन्त्री को शासन चलाने, विभिन्न मंत्रालयों के बीच समन्वय बनाने तथा जनता की शिकायतों का निपटान करने में प्रधानमन्त्री की सहायता करती है। यह कार्यालय प्रधानमन्त्री तथा उनके द्वारा प्रशासनिक सेवाओं के कुछ गिने–चुने वरिष्ठ अधिकारियों की मेजबानी करता है। प्रधानमन्त्री कार्यालय की अध्यक्षता प्रधानमन्त्री के प्रधान सचिव करते है। इसी कार्यालय के माध्यम से सभी मंत्रिमण्डलीय मंत्रिगण, स्वतंत्र–प्रभारी राज्यमंत्रिगण, मंत्रालयों, राज्य सरकारों तथा राज्यपालगण के साथ अधिकारिक संबंध तथा समन्वय साधते है। यह कार्यालय केंद्र सरकार का

ही एक हिस्सा है और रायसीना पहाड़ी, नई दिल्ली के सचिवीय भवनों के साउथ ब्लॉक से कार्य करता है।

प्रधानमन्त्री आवास

भारत के प्रधानमन्त्री का वर्त्तमान आधिकारिक निवास, 7, लोक कल्याण मार्ग पर अवस्थित है, जिसे पूर्वतः 7, रेस कोर्स रोड कहा जाता था। इस आवास का आधिकारिक नाम पंचवटी है। नई दिल्ली के लोक कल्याण मार्ग पर स्थित यह संपत्ति 12 एकरी भूमि पर फैली हुई है, जिसमें कुल पाँच बंगले शामिल है।

कुल मिला कर, इन पाँच भवनों, बगीचों तथा कुछ अन्य सामरिक संरचनाओं का यह समुह भारतीय प्रधानमन्त्री का आधिकारिक निवास तथा प्रमुख कार्यगार है। इस संपत्ति में प्रधानमन्त्री के निजी आवासीय क्षेत्र, कार्यगृह, सभागृह एवं अतिथिशाला स्थित है। यहाँ निवास करने वाले प्रथम् प्रधानमन्त्री, राजीव गांधी थे। भारत के सप्तम् प्रधानमन्त्री एवं राजीव गांधी के उत्तराधिकारी, प्रधानमन्त्री विश्वनाथ प्रताप सिंह ने पहली बार इसे स्वयं एवं भविष्य के प्रधानमंत्रियों के लिए अधिकारिक प्रधानमन्त्री आवास निर्दिष्ट किया था।

अमूमन प्रधानमन्त्रीगण अपने सारे आधिकारिक और राजनैतिक बैठकें यहीं किया करते है।, हालाँकि, प्रधानमन्त्री का मूल कार्यालय रायसीना की पहाड़ी पर स्थित, केंद्रीय सचिवालय में अवस्थित है, परंतु पंचवटी में भी प्रधानमन्त्री के लिए एक कार्यगृह एवं सभागृह विद्यमान है, जहाँ प्रधानमन्त्री यहीं रहते हुए अपने कार्यों का निर्वाह कर सकते है। यह एक अतितीव्र–सुरक्षा क्षेत्र है और हर क्षण विशेष सुरक्षा दल के पहरे में रहता है। साधारण जनमानस का प्रवेश यहाँ पूर्णतः निषेध होता है। लोक कल्याण मार्ग का नाम पूर्वतः रेस कोर्स रोड था। सितंबर 2016 में इसके नाम को परिवर्तित कर लोक कल्याण मार्ग कर दिया गया था।

सुरक्षा

भारतीय प्रधानमन्त्री पर प्रति क्षण मण्डरा रहे आत्मघाती संकट के मद्देनजर, प्रधानमन्त्री की सुरक्षा बेहद महत्वपूर्ण और चुनौतीपूर्ण विषय है। प्रधानमन्त्री की सुरक्षा, संघ की एक विशेष सुरक्षा बल, विशेष सुरक्षा दल (एसपीजी) की जिम्मेदार होती है, यह विशिष्ट बल सीधे केंद्र सरकार के मंत्रिमण्डलीय सचिवालय के अधीन है, और आसूचना ब्यूरो(आईबी) के अंतर्गत उसके एक विभाग के रूप में कार्य करती है। एसपीजी के जवान प्रधानमन्त्री को 24 घंटे एक विशेष सुरक्षा घेरा प्रदान

करते है, तथा उनकी अंगरक्षा, अनुरक्षण एवं उनके आवासों, विमानों और वाहनों की सुरक्षा, आरक्षा एवं अनुरक्षणिक जाँच प्रदान करती है।

एसपीजी देश की सबसे पेशेवर एवं आधुनिकतम सुरक्षा बलों में से एक है। एसपीजी के जवानों को सुरक्षा, अंगरक्षा, अनुरक्षण एवं अनुरक्षणिक जाँच हेतु विशेष एवं पेशेवर परिक्षण, उपकरण और पोशाप्रदान की जाती है तथा दृढ अनुशासन में रखा जाता है, ताकि प्रधानमन्त्री को सुरक्षा प्रदान करने में वे लोग पूर्णतः सक्षम रहै।

राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, देश के अन्य हिस्से, तथा विदेशी दौरों पर, हर स्थान, हर क्षण, प्रधानमन्त्री की अंगरक्षा एवं किसी भी प्रकार के हमले से उनकी सुरक्षा, विशेष सुरक्षा दल(एसपीजी) की जिम्मेदारी होती है। प्रधानमन्त्री की अंगरक्षा के अलावा एसपीजी प्रधानमन्त्री आवास, प्रधानमन्त्री कार्यालय तथा हर वह स्थान जहाँ प्रधानमन्त्री वास करते है, उनकी सुरक्षा करती है। साथ ही प्रधानमन्त्री के तत्काल परिवार एवं पूर्व प्रधानमंत्रियों और उनके परिवारों की सुरक्षा(पदत्याग के बाद १ वर्ष तक) भी एसपीजी करती है। प्रधानमन्त्री की अंगरक्षा हेतु एक विशेष सुरक्षा दल की आवश्यकता पहली बार प्रधानमन्त्री इंदिरा गांधी की हत्या के बाद महसूस हुई थी, तत्पश्चात, 1988 में एसपीजी को आईबी की एक विशेष अंग के रूप में, सीधे केंद्र सरकार के अंतर्गत एक सुरक्षा टुकड़ी के रूप में गठित किया गया था।

एसपीजी के गठन से पूर्व, 1981 से पहले राष्ट्रीय राजधानी में, प्रधानमन्त्री की सुरक्षा दिल्ली पुलिस की एक विशेष अंग के अंतर्गत थी। तत्पश्चात् प्रधानमन्त्री की अनुरक्षण एवं विशिष्ट सुरक्षा घेरा प्रदान करने हेतु, आसूचना ब्यूरो ने एक विशेष कार्य बल गठित किया। इंदिरा गांधी की हत्या के पश्चात् विशेष सुरक्षा दल को एक स्वतंत्र निर्देशक के अंतर्गत स्थापित किया गया, जोकि राजधानी, देश तथा विश्व के हर कोने में, जहाँ प्रधानमन्त्री जाएँ, वहां उनको सुरक्षा प्रदान करें।

अन्य सुविधाएँ एवं लाभ

भारत के प्रधानमन्त्री को सचिवीय सहायता, निःशुल्क आवास एवं 24 घंटे–365 दिन की एसपीजी सुरक्षा के अतिरिक्त और भी कई सुविधाएँ मुहैया कराई जाती है। प्रधानमन्त्री को देश एवं दुनिया भर में असंख्य निःशुल्क यात्राएँ करने की सुविधाएँ प्राप्त होती है। प्रधानमन्त्री की आवा–जाही हेतु विशिष्ट एवं अत्याधुनिक सुरक्षा–उपकरणों से लैस वाहन प्रदान किये जाते है।, जोकि बुलेट–प्रूफ और बम–प्रूफ होने के साथ–साथ इस तरह से बनाये जाते है। कि उसके ईंधन टंकी

को नुकसान पहुँचने के बावजूद भी उसमे विस्फोट नहीं होता है।

साथ ही प्रधानमन्त्री का विशेष वाहन फ्लैट टायर के साथ भी मीलों तक बिना रुके चल सकता है। इसके अलावा, गैस या रासायनिक हमले के समय, इस वाहन की अंदरुनी कक्ष, एक गैस–चैम्बर में तबदील होने में भी सक्षम है, ताकि बाहरी वायु भीतर प्रवेश ना कर सके, और कक्ष में ऑक्सीजन की सप्लाई भी मौजूद रहती है। प्रधानमन्त्री के विशेष वाहन के अलावा, प्रधानमन्त्री अपने विशेष काफिले के साथ चलते है।, जिनमे करीब दर्जन–भर और गाड़ियाँ होती है, जिनमें प्रधानमन्त्री की सुरक्षा में मशगूल एसपीजी के जवान प्रधानमन्त्री के अनुरक्षण हेतु उपस्थित रहते है। इसके अलावा काफिले में एक एम्बुलेंस और एक जैमर भी हमेशा मौजूद रहता है।

विशेष वाहन के अलावा प्रधानमन्त्री के लिए विशेष विमान भी उपलब्ध कराई जाती है। भारतीय प्रधानमन्त्री की मेजबानी कर रहे किसी भी विमान का आधिकारिक कॉल–साइन एयर इण्डिया वन होता है। इन विमानों को भारतीय वायु सेना द्वारा वीवीआईपी विमानों की तरह चलाया जाता है। वायु सेना, प्रधानमन्त्री, राष्ट्रपति एवं उपराष्ट्रपति की वायु यात्राओं के लिए कुछ विशेष विमान रखती है।

वायुसेना दो प्रकार के विमान रखती है, एक जिन्है। देश के भीतर यात्रा करने के लिए उपयोग किया जाता है, एवं दुसरे वो जिन्है। प्रधानमन्त्री के विदेश दौरों के लिए रखा जाता है।

यह तमाम विमान विशिष्ट उपकरणों और अत्याधुनिक उपकरणों से लैस होते है।, और प्रधानमन्त्री के विमानों की सुरक्षा एसपीजी के नियंत्रण में रहती है।

यातायात की सुविधाओं के अलावा, प्रधानमन्त्री को संपर्क और दूरभाष की भी अनेक सुविधाएँ प्राप्त है। प्रधानमन्त्री अपने सरकारी फोन से देश और दुनिया–भर में असंख्य निःशुल्क फोन कॉल कर सकते है।

सेवानिवृत्ति के उपरांत सुविधाएँ

सेवानिवृत्ति पश्चात्, पूर्व पदाधिकारियों को जीवन–भर की निःशुल्क आवास तहत सेवानिवृत्ति के बाद के पाँच वर्षों तक मेडिकल सुविधा, 14 सचिवीय कार्यकारिणी, कार्यकारी खर्च, वार्षिक तौर पर 6 एक्सिक्यूटिव कलास की अप्रवासिया वायु यात्राएँ एवं असंख्य मुफ्त ट्रेन यात्राएँ प्रदान किये जाते है।

सेवानिवृत्ति के एक वर्ष बाद तक उन्है। एसपीजी सुरक्षा प्रदान की जाती है। पाँच वर्षों की समाप्ति के पश्चात् उन्है। एक निजी सहायक, एक संत्री तथा

निःशुल्क वायु और ट्रेन टिकट तथा मासिक तौर पर ६००० के कार्यालय के खर्च लिए प्रदान की जाती है।

पद का इतिहास

1947–1980

वर्ष 1947 से 2015 तक, प्रधानमन्त्री के इस पद पर कुल 14 पदाधिकारी अपनी सेवा दे चुके हैं और यदि गुलजारीलाल नंदा को भी गिनती में शामिल किया जाए, जोकि दो बार कार्यवाही प्रधानमन्त्री के रूप में अल्पकाल हेतु अपनी सेवा दे चुके है।, तो यह आंकड़ा १५ तक पहुँचता है। 1947के बाद के कुछ दशकों ने भारत के राजनैतिक मानचित्र पर कांग्रेस पार्टी की लगभग चुनौतीहीन राज देखा।

इस कल के दौरान, कांग्रेस के नेतृत्व में कई मजबूत सरकारों का राज देखा, जिनका नेतृत्व कई शक्तिशाली व्यक्तित्व के प्रधानमन्त्रीगण ने किया। भारत के पहले प्रधानमन्त्री, जवाहरलाल नेहरू थे, जिन्होंने १५ अगस्त 1947 में कार्यकाल की शपथ ली थी। उन्होंने अविरल 17 वर्षों तक सेवा दी। उन्होंने 3 पूर्ण और एक निषपूर्ण कार्यकालों तक इस पद पर विराजमान रहै। उनका कार्यकाल, मई 1964 में उनकी मृत्यु पर समाप्त हुआ। वे इस समय तक, सबसे लंबे समय तक शासन संभालने वाले प्रधानमन्त्री है।

जवाहरलाल नेहरू की मृत्यु के बाद, उन्हींके पार्टी के, लाल बहादुर शास्त्री इस पद पर विद्यमान हुए, जिनके लघुकालीय 19–महीने के कार्यकाल ने वर्ष 1965 की कश्मीर युद्ध और उसमे पाकिस्तान की पराजय देखी। युद्ध के पश्चात, ताशकेंत के शांति–समझौते पर हस्ताक्षर करने के बाद, ताशकंद में ही उनकी अकारण व अकस्मात् मृत्यु हो गयी। शास्त्री के बाद, प्रधानमन्त्रीपद पर, नेहरू की पुत्री, इंदिरा गांधी इस पद पर, देश की पहली महिला प्रधानमन्त्री के तौर पर निर्वाचित हुई। इंदिरा का यह पहला कार्यकाल 11 वर्षों तक चला, जिसमें उन्होंने, बैंकों का राष्ट्रीयकरण और पूर्व राजपरिवारों को मिलने वाले शाही भत्ते और राजकीय उपादियों की समाप्ती, जैसे कठोर कदम लिया। साथ ही 1971 का युद्ध और बांग्लादेश की स्थापना, जनमत–संग्रह द्वारा सिक्किम का भारत में अभिगमन और पोखरण में भारत का पहला परमाणु परिक्षण जैसे ऐतिहासिक घटनाएँ भी इंदिरा गांधी के इस शासनकाल में हुआ।

परंतु इन तमाम उपलब्धियों के बावजूद, 1975 से 1977 तक का कुख्यात

आपातकाल भी इंदिरा गांधी ने ही लगवाया था। यह समय सरकार द्वारा, आंतरिक उथल–पुथल और अराजकता को षनियंत्रितष करने हेतु, लोकतांत्रिक नागरिक अधिकारों की समाप्ति और राजनैतिक विपक्ष के दमन के लिए कुख्यात रहा।

इस आपातकाल के कारण, इंदिरा के खिलाफ उठे विरोध की लहर के कारण, विपक्ष की तमाम राजनैतिक दलों ने आपातकाल के समापन के बाद, 1977 के चुनावों में, संगठित रूप से जनता पार्टी के छत्र के नीचे, कांग्रेस के खिलाफ एकजुट होकर लड़ा, और कांग्रेस को बुरी तरह परास्त करने में सफल रही। तथा, जनता पार्टी की गठबंधन की तरफ से मोरारजी देसाई देश के पहले गैर–कांग्रेसी प्रधानमन्त्री बने।

प्रधानमन्त्री मोरारजी देसाई की सरकार अत्यंत विस्तृत एवं कई विपरीत विचारधाराओं की राजनीतिक दलों द्वारा रचित थी, जिनका एकजुट होकर साथ चलना और विभिन्न राजनैतिक निर्णयों पर एकमत व समन्वय बरकरार रखना बहुत कठिन था। अंत्यतः ढाई वर्षों के बाद, 28 जुलाई 1979 को मोरारजी के इस्तीफे के साथ ही उनकी सरकार गिर गई। तत्पश्चात्, क्षणिक समय के लिए, मोरारजी की सरकार में उपप्रधानमन्त्री रहे, चौधरी चरण सिंह ने कांग्रेस के समर्थन से, बहुमत सिद्ध किया और प्रधानमन्त्री की शपथ ली।

उनका कार्यकाल केवल 5 महीनों तक चला(जुलाई 1979 से जनवरी 1980)। उन्है। भी घटक दलों के साथ समन्वय बना पाना कठिन हो रहा था, और अंततः कांग्रेस के समर्थन वापस लेने के कारण उन्होंने भी बहुमत खो दिया, और उन्है। भी इस्तीफा देना पड़ा।

इन तकरीबन 3 वर्षों की सत्ता से बेदखली के बाद, कांग्रेस पुनः भारी बहुमत के साथ सत्ता में आई, और इंदिरा गांधी को अपने दूसरे कार्यकाल के लिए निर्वाचित किया गया। इस दौरान, उनके द्वारा लिया गया बसे कठोर एवं विवादस्पद कदम था ऑपरेशन ब्लू स्टार, जिसे अमृतसर के हरिमंदिर साहिब में छुपे हुए खालिस्तानी आतंकवादियों के खिलाफ किया गया था। अंत्यतः, उनका कार्यकाल, 31 दिसंबर 1984 की सुबह को उनकी हत्या के साथ समाप्त हो गया।

1980–2000

इंदिरा के बाद, भारत के प्रधानमन्त्री बने, उनके बडे पुत्र, राजीव गांधी,

जिन्है।, 31 अक्टूबर की शाम को ही कार्यकाल की शपथ दिलाई गयी। उन्होंने पुनः निर्वाचन करवाया और इस बार, कांग्रेस ऐतिहासिक बहुमत प्राप्त कर, विजयी हुई। 1984 के चुनाव में कांग्रेस ने लोकसभा में 401 सीटों को आसानी स प्राप्त किया था, जोकि किसी भी दालद्वारा प्राप्त कि गई अधिकतम संख्या है।

40 वर्ष की आयु में प्रधानमन्त्रीपद की शपथ लेने वाले राजीव गांधी, इस पद पर विराजमान होने वाले सबसे युवा व्यक्ति थे। राजीव गांधी के बाद, राष्ट्रीय मंच पर , विश्वनाथ प्रताप सिंह, जोकि राजीव गांधी की कैबिनेट में, वित्तमंत्री और रक्षामंत्री के पद पर थे।

अपनी साफ छवि के लिए जाने वाले विश्वनाथ प्रताप सिंह ने अपने वित्तमंत्रीत्व और रक्षामंत्रीत्व के समय, भ्रष्टाचार, कला–बाजारी और टैक्स–चोरी जैसी समस्याओं के खिलाफ कई कदम उठाये थे, ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि इन कदमों में कई ऐसे भी थे, जिनके कारण कांग्रेस की पूर्व सरकारों के समय किये गए घोटालों पर से पर्दा उठ सकता था, और इसीलिए अपनी पार्टी की साख पर खतरे को देखते हुए, उन्हें राजीव गांधी ने मंत्रिमंडल से 1987 में निष्कासित कर दिया था। 1988 में उन्होंने जनता दल नमक राजनैतिक दल की स्थापना की, और अनेक कांग्रेस–विरोधी दलों की मदद से नेशनल फ्रंट नामक गठबंधन का गठन किया। 1989 के चुनाव में कांग्रेस 64 सीटों तक सीमित रह गयी, जबकि नेशनल फ्रंट, सबसे बड़ा ग्रुप बन कर उभरा। भारतीय जनता पार्टी और वामपंथी दलों के बाहरी समर्थन के साथ नेशनल फ्रंट ने सरकारबनाई, जिसका नेतृत्व विश्वनाथजी को दिया गया।

वी.पी. सिंह के कार्यकाल में सामाजिक न्याय की दिशा में कई कदम उठाये गए थे, जिनमे से एक था, मंडल आयोग की सुझावों को मानते हुए, अन्य पिछड़े वर्ग में आने वाले लोगो के लिए नौकरी और शिक्षण संस्थानों में कआरक्षण कोटे का प्रावधान पारित करना। इसके अलावा, उन्होंने, राजीव गांधी के काल में, श्रीलंका में तमिल आतंकवादियों के खिलाफ जारी सेना की कार्रवाई पर भी रोक लगा दी।

अमृतसर के हरिमंदिर साहिब में ऑपरेशन ब्लू स्टार हेतु क्षमा–याचना के लिए उनकी यात्रा, और उसके बाद के घटनाक्रमों ने पंजाब में तनाव को लगभग पूरी तरह शांत कर दिया था। परंतु अयोध्या में कारसेवा के लिए जा रहे लालकृष्ण आडवाणी के रथ यात्रा को रोक, आडवाणी की गिरफ्तारी के बाद, भाजपा ने

सरकार से अपना समर्थन वापस ले लिया। वी.पी.सिंह ने 7 नवंबर 1990 को अपना त्यागपत्र राष्ट्रपति को सौंप दिया।

सिंह के इस्तीफे के बाद, उनके पुर्व साथी, चंद्रशेखर ने 64 सांसदों के साथ समाजवादी जनता पार्टी गठित की और कांग्रेस के समर्थन के साथ, लोकसभा में बहुमत सिद्ध किया। परंतु उनका प्रधानमन्त्री काल अधिक समय तक टिक नहीं सका। कांग्रेस की समर्थन वापसी के कारण, नवंबर 1991 को चंद्रशेखर का एक वर्ष से भी कम का कार्यकाल समाप्त हुआ, और नए चुनाव घोषित किये गए।

प्रधानमन्त्री चंद्रशेखर के 6 महीनों के शासनकाल के पश्चात्, कांग्रेस पुनः सत्ता में आई, इस बार, पमुलापति वेंकट नरसिंह राव के नेतृत्व मे। नरसिंह राव, दक्षिण भारतीय मूल के पहले प्रधानमन्त्री थे। साथ ही वे न केवल नेहरू–गांधी परिवार से बहार के पहले कांग्रेसी प्रधानमन्त्री था, बल्कि वे नेहरू–गांधी परिवार के बहार के पहले ऐसे प्रधानमन्त्री थे, जिन्होंने अपना पूरे पाँच वर्षों का कार्यकाल पूरा किया था। नरसिंह राव जी का कार्यकाल, भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए निर्णायक एवं ऐतिहासिक परिवर्तन का समय था। अपने वित्तमंत्री, मनमोहन सिंह के जरिये, नरसिंह राव ने भारतीय अर्थव्यवस्था की उदारीकरण की शुरुआत की, जिसके कारण, भारत की अबतक सुस्त पड़ी, खतरों से जूझती अर्थव्यवस्था को पूरी तरह बदल दिया।

इन उदारीकरण के निर्णयों से भारत को एक दृढतः नियंत्रित, कृषि–उद्योग मिश्रित अर्थव्यवस्था से एक बाजार–निर्धारित अर्थव्यवस्था में तबदील कर दिया गया। इन आर्थिक नीतियों को, आगामी सरकारों ने जारी रखा, और भारतीय अर्थव्यवस्था को विश्व की सबसे गतिशील अर्थव्यवस्थाओं में से एक बनाया।

इन आर्थिक परिवर्तनों के आलावा, नरसिंह राव के कार्यकाल ने अयोध्या की बाबरी मस्जिद–रामजन्मभूमि के विवादित ढांचे का विध्वंस और भारतीय जनता पार्टी का एक राष्ट्रीय स्तर की दल के रूप में उदय भी देखा। नरसिंह राव जी का कार्यकाल, मई 1996 को समाप्त हुआ, जिसके बाद, देश ने अगले तीन वर्षों में चार, लघुकालीन प्रधानमन्त्री को देखा पहले अटल बिहारी वाजपेयी की १३ दिवसीय शासनकाल, तत्पश्चात्, प्रधानमन्त्री एच डी देवगौड़ा (1 जून, 1996 से 21 अप्रेल, 1997) और इंद्रकुमार गुजराल(21 अप्रेल, 1997 से 19 मार्च, 1998), दोनों की एक वर्ष से कम समय का कार्यकाल एवं तत्पश्चात्, पुनः प्रधानमन्त्री अटल बिहारी वाजपेयी की 19 माह की सरकार।

1998 में निर्वाचित हुए प्रधानमन्त्री अटल बिहारी वाजपेयी की सरकार ने कुछ अत्यंत ठोस और चुनौती पूर्ण कदम उठाए। मई 1998 में सरकार के गठन के एक महीने के बाद, सरकार ने पोखरण में पाँच भूतालिया परमाणु विस्फोट करने की घोषणा की। इन विस्फोटों के विरोध में अमरीका समेत कई पश्चिमी देशों ने भारत पर आर्थिक प्रतिबंध लगा दिए, परंतु रूस, फ्रांस, खाड़ी देशों और कुछ अन्य के समर्थन के कारण, पश्चिमी देशों का यह प्रतिबंध, पूर्णतः विफल रहा। इस आर्थिक प्रतिबंध की परिस्थिति को बखूबी संभालने को अटल सरकार की बेहतरीन कूटनीतिक जीत के रूप में देखा गया। भारतीय परमाणु परीक्षण के जवाब में कुछ महीने बाद, पाकिस्तान ने भी परमाणु परीक्षण किया। दोनों देशों के बीच बिगड़ते हालातों को देखते हुए, सरकार ने रिश्ते बेहतर करने की कोशिश की। फरवरी 1999 में दोनों देशों ने लाहौर घोषणा पर हस्ताक्षर किये, जिसमें दोनों देशों ने आपसी रंजिश खत्म करने, व्यापार बढ़ाने और अपनी परमाणु क्षमता को शांतिपूर्ण कार्यों के लिए इस्तेमाल करने की घोषणा की।

2000–वर्त्मान

17 अप्रैल 1999 को जयललिता की पार्टी आइएदमक ने सरकार से अपना समर्थन है दिया, और नए चुनावों की घोषणा करनी पड़ी तथा अटल सरकार को चुनाव तक, सामायिक शासन के स्तर पर घटा दिया गया। इस बीच, कारगिल में पाकिस्तानी घुसपैठ की खबर आई, और अटलजी की सरकार ने सैन्य कार्रवाई के आदेश दे दिए। यह कार्रवाई सफल रही और करीब 2 महीनों के भीतर, भारतीय सैना ने पाकिस्तान पर विजय प्राप्त कर ली।

1999 के चुनाव में भाजपा के नेतृत्व की राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन ने बहुमत प्राप्त की, और प्रधानमन्त्री अटल बिहारी वाजपेयी अपनी कुर्सी पर बरकरार रहै। अटल ने आर्थिक उदारीकरण की प्रक्रिया को बरकरार रखा और उनके शासनकाल में भारत ने अभूतपूर्व आर्थिक विकास दर प्राप्त किया। साथ ही इंफ्रास्ट्रक्चर और बुनियादी सहूलियतों के विकास के लिए सरकार ने कई निर्णायक कदम उठाए, जिनमें राजमार्गों और सडकों के विकास के लिए राष्ट्रीय राजमार्ग विकास परियोजना और प्रधानमन्त्रीं ग्राम सड़क योजना जैसी योजनाएँ शामिल है। परंतु, उनके शासनकाल के दौरान, वर्ष 2002 में, गुजरात में गोधरा कांड के बाद भड़के हिन्दू–मुस्लिम दंगों ने विशेष कर गुजरात एवं देश के अन्य कई हिस्सों में, स्वतंत्रता–पश्चात् भारत के सबसे हिंसक और दर्दनाक सामुदायिक दंगों को भड़का दिया। सरकार पर और गुजरात के तत्कालीन मुख्यमंत्री, नरेंद्र मोदी, पर

उस समय, दंगो के दौरान रोक– थाम के उचित कदम नहीं उठाने का आरोप लगाया गया था। प्रधानमन्त्री वाजपेयी का कार्यकाल मई 2004 को समाप्त हुआ। वे देश के पहले ऐसे गैर–कांग्रेसी प्रधानमन्त्री थे, जिन्होंने अपना पूरे पाँच वर्षों का कार्यकाल पूर्ण किया था।

2004 के चुनाव में राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन, लोकसभा में बहुमत प्राप्त करने में अक्षम रहा, और कांग्रेस सदन में सबसे बड़ी दल बन कर उभरी। वामपंथी पार्टियों और कुछ अन्य दलों के समर्थन के साथ, कांग्रेस के नेतृत्व में यूपीए (संयुक्त विकासवादी गठबंधन) की सरकार स्थापित हुई, और प्रधानमन्त्री बने मनमोहन सिंह। वे देश के पहले सिख प्रधानमन्त्री थे। उन्होंने दो पूर्ण कार्यकालों तक इस पद पर अपनी सेवा दी थी। उनके कार्यकाल में, देश ने प्रधानमन्त्री वाजपेयी के समय हासिल की गयी आर्थिक गति को बरकरार रखा।

इसके अलावा, सरकार ने आधार (विशिष्ट पहचान पत्र) और सूचना अधिकार जैसी सुविधाएँ पारित की। इसके अलावा, मनमोहन सिंह के कार्यकाल में अनेक सामरिक और सुरक्षा–संबंधित चुनौतियों का सामना करना पड़ा। 26 नवंबर 2008 को मुम्बई पर हुए आतंकवादी हमले के बाद, देश में कई सुरक्षा सुधार कार्यान्वित किये गए। उनके पहले कार्यकाल के अंत में अमेरिका के साथ, नागरिक परमाणु समझौते के मुद्दे पर, लेफ्ट फ्रंट के समर्थन–वापसी से सरकार लगभग गिरने के कागार पर पहुँच चुकी थी, परंतु सरकार बहुमत सिद्ध करने में सक्षम रही।

2009 के चुनाव में कांग्रेस और भी मजबूत जनादेश के साथ सदन में आई और प्रधानमन्त्री मनमोहन सिंह प्रधानमन्त्री के आसन पर विद्यमान रहै। प्रधानमन्त्री मनमोहन सिंह का दूसरा कार्यकाल, अनेक उच्चस्तरीय घोटालों और भ्रष्टाचार के आरोपों से घिरा रहा। साथ ही आर्थिक उदारीकरण के बाद आई प्रशंसनीय आर्थिक गति भी सुस्त पड़ गयी और अनेक महत्वपूर्ण परिस्थितियों में ठोस व निर्णायक कदम न उठा पाने के कारण सरकार सरकार की छवि काफी खराब हुई थी। प्रधानमन्त्री मनमोहन सिंह का कार्यकाल, 2014 में समाप्त हो गया। 2014 के चुनाव में भारतीय जनता पार्टी, जिसने भ्रष्टाचार और आर्थिक विकास के मुद्दे पर चुनाव लड़ा था, ने अभूतपूर्व बहुमत प्राप्त किया, और नरेंद्र मोदी को प्रधानमन्त्री नियुक्त किया गया।

वे पहले ऐसे गैर–कांग्रेसी प्रधानमन्त्री है जोकि पूर्ण बहुमत के साथ सत्ता पर विद्यमान हुए है। साथ ही वे पहले ऐसे प्रधानमन्त्री है जोकि आजाद भारत में जन्मे है।

8

संसद

संसद (पार्लियामेंट) भारत का सर्वोच्च विधायी निकाय है। यह द्विसदनीय व्यवस्था है। भारतीय संसद में राष्ट्रपति तथा दो सदन– लोकसभा (लोगों का सदन) एवं राज्यसभा (राज्यों की परिषद) होते हैं। राष्ट्रपति के पास संसद के दोनों में से किसी भी सदन को बुलाने या स्थगित करने अथवा लोकसभा को भंग करने की शक्ति है। भारतीय संसद का संचालन संसद भवन में होता है। जो कि नई दिल्ली में स्थित है।

लोक सभा में राष्ट्र की जनता द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि होते हैं जिनकी अधिकतम संख्या ५५२ है। राज्य सभा एक स्थायी सदन है जिसमें सदस्य संख्या २५० है। राज्य सभा के सदस्यों का निर्वाचन मनोनयन ६ वर्ष के लिए होता है। जिसके १–३ सदस्य प्रत्येक २ वर्ष में सेवानिवृत्त होते है।

परिचय

भारत की राजनीतिक व्यवस्था को, या सरकार जिस प्रकार बनती और चलती है, उसे संसदीय लोकतंत्र कहा जाता है।

ग्राम–पंचायतें हमारे जन–जीवन का अभिन्न अंग रही है। पुराने समय में गाँवो की पंचायत चुनाव से गठित की जाती थी। उसे न्याय और व्यवस्था, दोनों ही क्षेत्रों में खूब अधिकार मिले हुए थे। पंचायतों के सदस्यों का राजदरबार में बड़ा आदर होता था। यही पंचायतें भूमि का बंटवारा करती थीं। कर वसूल करती थीं। गाँव की ओर से सरकार कर का हिस्सा देती थीं।

कहीं कहीं कई ग्राम–पंचायतों के ऊपर एक बड़ी पंचायत भी होती थी। यह उन पर निगरानी और नियंत्रण रखती थी। कुछ पुराने शिलालेख यह भी बताते हैं कि ग्राम–पंचायतों के सदस्य किस प्रकार चुने जाते थे। सदस्य बनने के लिए जरूरी गुणों और चुनावों में महिलाओं की भागीदारी के नियम भी इस पर लिखे थे।

अच्छा आचरण न करने पर अथवा राजकीय धन का ठीक ठीक हिसाब न कर पाने पर कोई भी सदस्य पद से हटाया जा सकता था। पदों पर किसी भी सदस्य का कोई निकट–संबंधी नियुक्त नहीं किया जा सकता था।

मध्य युग में आकर संसद सभा और समिति जैसी संस्थाएं गायब हो गईं। ऊपर के स्तर पर लोकतंत्रात्मक संस्थाओं का विकास रूक गया। सैकड़ों वर्षों तक हम आपसी लड़ाइयों में उलझे रहे। विदेशियों के आक्रमण पर आक्रमण होते रहे। सेनाएं हारती–जीतती रहीं। शासक बदलते रहे। हम विदेशी शासन की गुलामी में भी जकड़े रहे।

सिंध से असम तक और कश्मीर से कन्याकुमारी तक, पंचायत संस्थाएं बराबर चलती रहीं। ये प्रादेशिक जनपद परिषद् नगर परिषद, पौर सभा, ग्राम सभा, ग्राम संघ जैसे अलग नामों से पुकारी जाती रहीं। सच में ये पंचायतें ही गांवों की 'संसद' थीं।

सन 1883 के चार्टर अधिनियम में पहली बार एक विधान परिषद के बीज दिखाई पड़े। 1853 के अंतिम चार्टर अधिनियम के द्वारा विधायी पार्षद शब्दों का प्रयोग किया गया। यह नयी कौंसिल शिकायतों की जांच करने वाली और उन्हें दूर करने का प्रयत्न करने वाली सभा जैसा रूप धारण करने लगी। 1857 की आजादी के लिए पहली लड़ाई के बाद 1861 का भारतीय कौंसिल अधिनियम बना। इस अधिनियम को 'भारतीय विधानमंडल का प्रमुख घोषणापत्र' कहा गया। जिसके द्वारा 'भारत में विधायी अधिकारों के अंतरण की प्रणाली' का उदघाटन हुआ।

इस अधिनियम द्वारा केंद्रीय एवं प्रांतीय स्तरों पर विधान बनाने की व्यवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए गए। अंग्रेजी राज के भारत में जमने के बाद पहली बार विधायी निकायों में गैर–सरकारी लोगों के रखने की बात को माना गया।

1860 और 1870 के दशकों से ही भारतीयों में राजनीतिक चेतना पनपने लगी थी। 1870 के अंत में 1880 के दशक के शुरू में भारतीय जनमानस राजनीतिक रूप से काफी जागरूक हो चुका था। 1885 में इस राजनीतिक चेतना ने करवट बदली।

भारतीय राजनीतिक और राजनीति में सक्रिय बुद्धिजीवी, राष्ट्रीय हितों के लिए राष्ट्रीय स्तर पर संघर्ष करने के लिए एक संगठन की जरूरत महसूस किए। इसी कड़ी में ए०ओ०ह्यूम ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना 1885 में की ताकि कौंसिल में सुधार कर सके। ब्रिटिश संसद ने 'विधान परिषदों में भारत की जनता को वास्तव में प्रतिनिधित्व देने' के लिए इंडियन कौंसिल्ज अधिनियम 1892 को स्वीकार किया।

1919 में सुधार अधिनियम और उसके अधीन कई नियम बनाए गए। जिनके कारण केंद्र में, भारतीय विधान परिषद के स्थान पर द्विसदनीय विधानमंडल बनाया गया। जिसमें एक थी राज्य परिषद और दूसरा थी विधान सभा।

प्रत्येक सदन में अधिकांश सदस्यों का चुनाव होता था। पहली विधान सभा वर्ष 1921 में गठित हुई थी। उसके कुल 145 सदस्य थे। 104 निर्वाचित, 26 सरकारी सदस्य और 15 मनोनीत गैर–सरकारी सदस्य।

1923 में, देशबंधु चितरंजन दास और पंडित मोतीलाल नेहरू ने स्वराज पार्टी बनाई। वे सोचते थे कि 'शत्रु के कैंप' में घुसकर व्यवस्था को तोड़ने के लिए परिषदों में स्थान बनाया जाए। इसके लिए चुनाव में भाग लिया गया। स्वराज पार्टी को 1923 के चुनावों में बहुत सफलता मिली। स्वराज पार्टी ने 145 स्थानों में से 45 स्थान जीते। पार्टी केंद्रीय विधानमंडल में थी।

केंद्रीय विधान सभा के नए चुनाव में कांग्रेस 1942 के 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव को लेकर लड़ा। चुनावों में कांग्रेस को 102 में से 56 सीटें मिलीं। कांग्रेस विधायक दल के नेता शरत चन्द्र बोस थे। भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947 के अधीन कुछ परिवर्तन हुए। 1935 के अधिनियम के वे उपबंध काम के नहीं रह गए जिनके तहत गवर्नर–जनरल या गवर्नर अपने विवेकाधिकार के अनुसार अथवा अपने व्यक्तिगत विचार के अनुसार कार्य कर सकता था।

भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, 1947 में भारत की संविधान सभाको पूर्ण प्रभुसत्ता संपन्न निकाय घोषित किया गया। 14–15 अगस्त 1947 की मध्य रात्रि को उस सभा ने देश का शासन चलाने की पूर्ण शक्तियां ग्रहण कर लीं।

अधिनियम की धारा 8 के द्वारा संविधान सभा को पूर्ण विधायी शक्ति प्राप्त हो गई। किंतु साथ ही यह अनुभव किया गया कि संविधान सभा के संविधान–निर्माण के कार्य तथा विधानमंडल के रूप में इसके साधारण कार्य में भेद बनाए रखना जरूरी होगा।

संविधान सभा (विधायी) की एक अलग निकाय के रूप में पहली बैठक 17 नवम्बर 1947 को हुई। इसके अध्यक्ष सभा के प्रधान डॉ० राजेन्द्र प्रसाद थे।

संविधान अध्यक्ष पद के लिए केवल श्री जी.वी. मावलंकर का एक ही नाम प्राप्त हुआ था। इसलिए उन्हें विधिवत चुना हुआ घोषित किया गया। 14 नवम्बर 1948 को संविधान का प्रारूप संविधान सभा में प्रारूप समिति के सभापति बी०आर० अम्बेडकर ने पेश किया। प्रस्ताव के पक्ष में बहुमत था। 26 जनवरी 1950 को स्वतंत्र भारत के गणराज्य का संविधान लागू हो गया।

इसके कारण आधुनिक संस्थागत ढांचे और उसकी अन्य सब शाखा–प्रशाखाओं सहित पूर्ण संसदीय प्रणाली स्थापित हो गई। संविधान सभा भारत की अस्थायी संसद बन गई। वयस्क मताधिकार के आधार पर पहले आम चुनावों के बाद नए संविधान के उपबंधों के अनुसार संसद का गठन होने तक इसी प्रकार कार्य करती रही।

नए संविधान के तहत पहले आम चुनाव वर्ष 1951–52 में हुए। पहली चुनी हुई संसद जिसके दो सदन थे, राज्यसभा और लोकसभा मई, 1952 में बनीय दूसरी लोक सभा मई 1957 में बनीय तीसरी अप्रैल 1962 में चौथी मार्च 1967 मेंय पांचवी माच 1971 में 6 मार्च 1977 में सातवीं जनवरी 1980 में 8 जनवरी 1985 मेंय नवीं दिसंबर 1989 में, दसवीं जून 1991 और ग्यारहवीं 1996 में बनी।

1952 में पहली बार गठित राज्यसभा एक निरंतर रहने वाला, स्थायी सदन है। जिसका कभी विघटन नहीं होता। हर दो वर्ष इसके एक–तिहाई सदस्य अवकाश ग्रहण करते हैं।

संसद की भूमिका

भारतीय लोकतंत्र में संसद जनता की सर्वोच्च प्रतिनिधि संस्था है। इसी माध्यम से आम लोगों की संप्रभुता को अभिव्यक्ति मिलती है। संसद ही इस बात का प्रमाण है कि हमारी राजनीतिक व्यवस्था में जनता सबसे ऊपर है, जनमत सर्वोपरि है।

'संसदीय' शब्द का अर्थ ही ऐसी लोकतंत्रात्मक राजनीतिक व्यवस्था है जहाँ सर्वोच्च शक्ति लोगों के प्रतिनिधियों के उस निकाय में निहित है जिसे 'संसद' कहते हैं।

भारत के संविधान के अधीन संघीय विधानमंडल को 'संसद' कहा जाता है। यह वह धुरी है, जो देश के शासन की नींव है। भारतीय संसद राष्ट्रपति और दो

सदनों राज्यसभा और लोकसभा से मिलकर बनती है।

राष्ट्रपति

वैसे तो भारत का राष्ट्रपति संसद का अंग होता है, फिर भी वह दोनों में से किसी भी सदन में न तो बैठता है, न ही उसकी चर्चाओं में भाग लेता है। राष्ट्रपति समय समय पर संसद के दोनों सदनों को बैठक के लिए आमंत्रित करता है।

दोनों सदनों द्वारा पास किया गया कोई विधेयक तभी कानून बन सकता है जब राष्ट्रपति उस पर अपनी अनुमति प्रदान कर दे। इतना ही नहीं, जब संसद के दोनों सदनों का अधिवेशन न चल रहा हो और राष्ट्रपति को महसूस हो कि इन परिस्थितियों में तुरंत कार्यवाही जरूरी है तो वह अध्यादेश जारी कर सकता है। इस अध्यादेश की शक्ति एवं प्रभाव वही होता है जो संसद द्वारा पास की गई विधि ा का होता है।

लोकसभा के लिए प्रत्येक आम चुनाव के पश्चात अधिवेशन के शुरू में और हर साल के पहले अधिवेशन के प्रारंभ में राष्ट्रपति एक साथ संसद के दोनों सदनों के सामने अभिभाषण करता है।

वह सदनों की बैठक बुलाने के कारणों की संसद को सूचना देता है। इसके अलावा वह संसद के किसी एक सदन अथवा एक साथ दोनों के समक्ष अभिभाषण कर सकता है। इसके लिए वह सदस्यों की उपस्थिति की अपेक्षा कर सकता है।

उसे संसद में उस समय लंबित किसी विधेयक के संबंध में संदेश या कोई अन्य संदेश किसी भी सदन को भेजने का अधिकार है। जिस सदन को कोई संदेश इस प्रकार भेजा गया हो वह सदन उस संदेश में लिखे विषय पर सुविधानुसार शीघ्रता से विचार करता है। कुछ प्रकार के विधेयक राष्ट्रपति की सिफारिश प्राप्त करने के बाद ही पेश किए जा सकते हैं अथवा उन पर आगे कोई कार्यवाही की जा सकती है।

राज्यसभा

जैसा कि इसके नाम से पता चलता है, राज्यसभा राज्यों की परिषद है। यह अप्रत्यक्ष रीति से लोगों का प्रतिनिधित्व करती है। राज्यसभा के सदस्य का चुनाव राज्य विधान सभाओं के चुने हुए विधायक करते हैं। प्रत्येक राज्य के प्रतिनिधियों की संख्या ज्यादातर उसकी जनसंख्या पर निर्भर करती है।

इस प्रकार, छत्तीसगढ़ के राज्यसभा में 5 सदस्य हैं, उत्तर प्रदेश के राज्यसभा में 31 सदस्य हैं। मणिपुर, मिजोरम, सिक्किम, त्रिपुरा आदि छोटे राज्यों के केवल एक एक सदस्य हैं। राज्यसभा में 250 तक सदस्य हो सकते हैं। इनमें राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत 12 सदस्य तथा 238 राज्यों और संघ–राज्य क्षेत्रों द्वारा चुने सदस्य होते हैं।

इस समय राज्यसभा के 245 सदस्य हैं। राज्यसभा के प्रत्येक सदस्य की कार्यावधि छः वर्ष है। उपराष्ट्रपति, संसद के दोनों सदनों के सदस्यों द्वारा निर्वाचित किया जाता है। वह राज्यसभा का पदेन सभापति होता है। उपसभापति पद के लिए राज्यसभा के सदस्यों द्वारा अपने में से किसी सदस्य को चुना जाता है।

लोक सभा

लोक सभा के सदस्यों का चुनाव जनता द्वारा सीधे वोट डालकर किया जाता है। 18 साल और उससे अधिक आयु का हर एक भारतीय नागरिक मतदान करने का हकदार होगा। लोक सभा के अधिकतम 530 सदस्य राज्यों से चुनाव क्षेत्रों की प्रत्यक्ष रीति से चुने जाएंगे। अधिकतम 20 सदस्य संघ राज्य क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करेंगे।

इसके अतिरिक्त, राष्ट्रपति आंग्ल–भारतीय समुदाय का प्रतिनिधित्व करने के लिए दो से अनधिक सदस्य मनोनीत कर सकता है। इस प्रकार सदन की अधिकतम सदस्य संख्या 552 हो, ऐसी संविधान में परिकल्पना की गई है। लोक सभा में अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के लिए जनसंख्या–अनुपात के आधार पर स्थान आरक्षित है। आरंभ में यह आरक्षण दस वर्ष के लिए था।

नवीनतम संशोधन के अंतर्गत अब यह पचास वर्ष के लिए अर्थात सन २००० तक के लिए हैं। भारत में सदन की कार्यावधि पाँच वर्षों की है।

पाँच वर्षों की अवधि समाप्त हो जाने पर सदन खुद भंग हो जाता है। कुछ परिस्थितियों में संसद को पूर्ण कार्यावधि समाप्त होने से पहले ही भंग किया जा सकता है। आपातकाल की स्थति में संसद लोक सभा की कार्यावधि बढ़ा सकती है। यह एक बार में एक वर्ष से अधिक नहीं हो सकती।

संसद के दोनों सदनों को, कुछ मामलों को छोड़कर सभी क्षेत्रों में समान शक्तियां एवं दर्जा प्राप्त है। कोई भी गैर–वित्तीय विधेयक अधिनियम बनने से पहले दोनों में से प्रत्येक सदन द्वारा पास किया जाना आवश्यक है।

राष्ट्रपति पर महाभियोग चलाने, उपराष्ट्रपति को हटाने, संविधान में संशोधन करने और उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को हटाने जैसे महत्वपूर्ण मामलों में राज्यसभा को लोक सभा के समान शक्तियां प्राप्त है।

राष्ट्रपति के अध्यादेशों, आपात की उदघोषणा और किसी राज्य में संवैधानिक व्यवस्था के विफल हो जाने की उदघोषणा और किसी राज्य में संवैधानिक व्यवस्था के विफल हो जाने की उदघोषणा को संसद के दोनों सदनों के समक्ष रखना अनिवार्य है।

किसी धन विधेयक और संविधान संशोधन विधेयक को छोड़कर अन्य किसी भी विधेयक पर दोनों सदनों के बीच असहमति को दोनों सदनों द्वारा संयुक्त बैठक में दूर किया जाता है। इस बैठक में मामले बहुमत द्वारा तय किए जाते हैं। दोनों सदनों की ऐसी बैठक का पीठासीन अधिकारी लोकसभा का अध्यक्ष होता है।

संसद और सरकार

भारत में प्रधानमंत्री और मंत्री दोनों सदनों में से किसी भी एक का सदस्य हो सकते हैं। किसी ऐसे व्यक्ति को भी प्रधानमंत्री या मंत्री नियुक्त किया जा सकता है जो संसद के किसी भी सदन का सदस्य न हो, परंतु उसे छः मास के पश्चात पद छोड़ना पड़ता है, यदि इस बीच, वह दोनों में से किसी सदन के लिए निर्वाचित न हो जाए। मंत्रिपरिषद सामूहिक रूप से लोक सभा के प्रति उत्तरदायी है। अंतः उसके लिए यह जरूरी है कि लोक सभा का विश्वास खोते ही पद–त्याग कर दें।

संसदीय शासन का अर्थ होना चाहिए संसद द्वारा शासन। किंतु संसद स्वयं शासन नहीं करती और न ही कर सकती है। मंत्रिपरिषद के बारे में एक तरह से कहा जा सकता है कि यह संसद की महान कार्यपालिका समिति होती है।

जिसे मूल निकाय की ओर से शासन करने का उत्तरदायित्व सौंपा जाता है। संसद का कार्य विधान बनाना, मंत्रणा देना, आलोचना करना और लोगों की शिकायतों को व्यक्त करना है। कार्यपालिका का कार्य शासन करना है, यद्यपि वह संसद की ओर से ही शासन करती है।

संसद सदस्यों का चुनाव

भारत जैसे बड़े और भारी जनसंख्या वाले देश में चुनाव कराना एक बहुत बड़ा काम है। संसद के दोनों सदनों– लोकसभा और राज्यसभा– के लिए चुनाव बेरोकटोक और निष्पक्ष हों, इसके लिए एक स्वतंत्र चुनाव (निर्वाचन) आयोग

बनाया गया है।

लोक सभा के लिए सामान्य चुनाव जब उसकी कार्यवधि समाप्त होने वाली हो या उसके भंग किए जाने पर कराए जाते हैं। भारत का प्रत्येक नागरिक जो 18 वर्ष का या उससे अधिक हो मतदान का अधिकारी है। लोकसभा का चुनाव लड़ने के लिए कम से कम आयु 25 वर्ष है और राज्यसभा के लिए 30 वर्ष।

राज्यसभा

राज्यसभा के सदस्य राज्यों के लोगों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इनका चुनाव राज्य की विधान सभा के चुने हुए सदस्यों द्वारा होता है। राज्यसभा में स्थान भरने के लिए राष्ट्रपति, चुनाव आयोग द्वारा सुझाई गई तारीख को, अधिसूचना जारी करता है। जिस तिथि को सेवानिवृत्त होने वाले सदस्यों की पदावधि समाप्त होनी हो उससे तीन मास से अधिक समय से पूर्व ऐसी अधिसूचना जारी नहीं की जाती। चुनाव अधिकारी, चुनाव आयोग के अनुमोदन से मतदान का स्थान निर्धारित और अधिसूचित करता है।

लोक सभा

नयी लोक सभा के चुनाव के लिए राष्ट्रपति, राजपत्र में प्रकाशित अधिसूचना द्वारा, चुनाव आयोग द्वारा सुझाई गई तिथि को, सभी संसदीय निर्वाचन क्षेत्रों से सदस्य चुनने के लिए कहता है। अधिसूचना जारी किए जाने के पश्चात चुनाव आयोग नामांकन पत्र दायर करने, उनकी छानबीन करने, उन्हें वापस लेने और मतदान के लिए तिथियां निर्धारित करता है।

लोक सभा के लिए प्रत्यक्ष चुनाव होने के कारण भारत के राज्य क्षेत्र को उपयुक्त प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों में बांटा जाता है। प्रत्येक संसदीय निर्वाचन क्षेत्र से एक सदस्य को चुना जाता है।

स्थान खाली हो जाना

यदि एक सदन का कोई सदस्य दूसरे सदन के लिए भी चुन लिया जाता है तो पहले सदन में उसका स्थान उस तिथि से खाली हो जाता है जब वह अन्य सदन के लिए चुना गया हो। इसी प्रकार, यदि वह किसी राज्य विधानमंडल के सदस्य के रूप में भी चुन लिया जाता है तो, यदि वह राज्य विधानमंडल में अपने स्थान से, राज्य के राजपत्र में घोषणा के प्रकाशन से 14 दिनों के भीतर, त्यागपत्र नहीं दे देता तो, संसद का सदस्य नहीं रहता। यदि कोई सदस्य, सदन की

अनुमति के बिना 60 दिन की अवधि तक सदन की किसी बैठक में उपस्थित नहीं होता तो वह सदन उसके स्थान को रिक्त घोषित कर सकता है। इसके अलावा, किसी सदस्य को सदन में अपना स्थान रिक्त करना पड़ता है यदि–

(1) वह लाभ का कोई पद धारण करता है,

(2) उसे विकृत चित्त वाला व्यक्ति या दिवालिया घोषित कर दिया जाता है,

(3) वह स्वेच्छा से किसी विदेशी राज्य की नागरिकता प्राप्त कर लेता है,

(4) उसका निर्वाचन न्यायालय द्वारा शून्य घोषित कर दिया जाता है,

(5) वह सदन द्वारा निष्कासन का प्रस्ताव स्वीकृत किए जाने पर निष्कासित कर दिया जाता है या

(6) वह राष्ट्रपति या किसी राज्य का राज्यपाल चुन लिया जाता है।

यदि किसी सदस्य को संविधान की दसवीं अनुसूची के उपबंधो के अंतर्गत दल–बदल के आधार पर अयोग्य सिद्ध कर दिया गया हो, तो उस स्थिति में भी उसकी सदस्यता समाप्त हो सकती है।

चुनाव संबंधी विवाद

संसद के या किसी राज्य विधानमंडल के किसी सदन के लिए हुए किसी चुनाव को चुनौती उच्च–न्यायालय में दी जा सकती है। याचिका चुनाव के दौरान कोई भ्रष्ट प्रक्रिया अपनाने के कारण पेश की जा सकती है।

यदि सिद्ध हो जाए तो उच्च न्यायालय को यह शक्ति प्राप्त है कि वह सफल उम्मीदवार का चुनाव शून्य घोषित कर दे। प्रभावित पक्ष को उच्च न्यायालय के आदेश के विरूद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील करने का अधिकार है।

संसद के सत्र और बैठकें

लोक सभा प्रत्येक आम चुनाव के बाद चुनाव आयोग द्वारा अधिसूचना जारी किए जाने पर गठित होती है। लोक सभा की पहली बैठक शपथ विधि के साथ शुरू होती है। इसके नव निर्वाचित सदस्य 'भारत के संविधान के प्रति श्रद्धा और निष्ठा रखने के लिए, भारत की प्रभुता और अखंडता अक्षुण्ण रखने के लिए' और 'संसद सदस्य के कर्तव्यों का श्रद्धापूर्वक निर्वहन करने के लिए' शपथ लेते हैं।

राष्ट्रपति द्वारा आमंत्रण

राष्ट्रपति समय समय पर संसद के प्रत्येक सदन को बैठक के लिए आमंत्रित करता है। प्रत्येक अधिवेशन की अंतिम तिथि के बाद राष्ट्रपति को छः मास के भीतर आगामी अधिवेशन के लिए सदनों को बैठक के लिए आमंत्रित करना होता है। यद्यपि सदनों को बैठक के लिए आमंत्रित करने की शक्ति राष्ट्रपति में निहित है तथापि व्यवहार में इस आशय के प्रस्ताव की पहल सरकार द्वारा की जाती है।

संसद के सत्र

सामान्यतः प्रतिवर्ष संसद के तीन सत्र या अधिवेशन होते हैं। यथा बजट अधिवेशन (फरवरी–मई), मानसून अधिवेशन (जुलाई–अगस्त) और शीतकालीन अधिवेशन (नवंबर–दिसंबर)। किंतु, राज्यसभा के मामले में, बजट के अधिवेशन को दो अधिवेशनों में विभाजित कर दिया जाता है। इन दो अधिवेशनों के बीच तीन से चार सप्ताह का अवकाश होता है। इस प्रकार राज्यसभा के एक वर्ष में चार अधिवेशन होते हैं। राष्ट्रपति का अभिभाषण नव निर्वाचित सदस्यों की शपथ के बाद अध्यक्ष का चुनाव होता है। इसके बाद, राष्ट्रपति संसद भवन के केंद्रीय कक्ष में एक साथ संसद के दोनों सदनों के समक्ष अभिभाषण करता है।

राष्ट्रपति का अभिभाषण बहुत महत्वपूर्ण अवसर होता है। अभिभाषण में ऐसी नीतियों एवं कार्यक्रमों का विवरण होता है जिन्हें आगामी वर्ष में कार्यरूप देने का विचार हो। साथ ही, पहले वर्ष की उसकी गतिविधियों और सफलताओं की समीक्षा भी दी जाती है। वह अभिभाषण चूंकि सरकार की नीति का विवरण होता है अंतः सरकार द्वारा तैयार किया जाता है। अभिभाषण पर चर्चा बहुत व्यापक रूप से होती है। धन्यवाद प्रस्ताव के संशोधनों के द्वारा उन मामलों पर भी चर्चा हो सकती है जिनका अभिभाषण में विशेष रूप से उल्लेख न हो।

अध्यक्षध्उपाध्यक्ष का चुनाव

लोक सभा सदन के दो सदस्यों को अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के रूप में चुनती है। कुछ ऐसी परंपरा बनी है कि उपाध्यक्ष विपक्ष के सदस्यों में से चुना जाता है। प्रायः यह कोशिश रहती है कि अध्यक्ष और उपाध्यक्ष तथा राज्यसभा में सभापति और उपसभापति का यह काम है कि वे अपने सदन की कार्यवाही को व्यवस्थित ढंग से नियमों के अनुसार चलाएं।

कार्यक्रम और प्रक्रिया

संसदीय कार्य दो मुख्य शीर्षों में बांटा जा सकता है। सरकारी कार्य और गैर–सरकारी कार्य। सरकारी कार्य को फिर दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है,

(क) ऐसे कार्य जिनकी शुरूआत सरकार द्वारा की जाती है, और

(ख) ऐसे कार्य जिनकी शुरूआत गैर–सरकारी सदस्यों द्वारा की जाती है परंतु जिन्हें सरकारी कार्य के समय में लिया जाता है जैसे प्रश्न, स्थगन प्रस्ताव, अविलंबनीय लोक महत्व के मामलों की ओर ध्यान दिलाना, विशेषाधिकार के प्रश्न, अविलंबनीय लोक महत्व के मामलों पर चर्चा, मंत्रिपरिषद में अविश्वास का प्रस्ताव, प्रश्नों के उत्तरों से उत्पन्न होने वाले मामलों पर आधे घंटे की चर्चाएं इत्यादि।

गैर–सरकारी सदस्यों के कार्य, अर्थात विधेयकों और संकल्पों पर प्रत्येक शुक्रवार के दिन या किसी ऐसे दिन जो अध्यक्ष निर्धारित करे ढाई घंटे तक चर्चा की जाती है।

सदन में किए जाने वाले विभिन्न कार्यों के लिए समय की सिफारिश सामान्यतः कार्य मंत्रणा समिति द्वारा की जाती है। प्रायः हर सप्ताह एक बैठक होती है।

संसद के दोनों सदनों की कार्यवाही की छपी हुई प्रतियां सामान्यतः बैठक के बाद एक मास के अंदर उपलब्ध करा दी जाती हैं। कार्यवाही को टेप रिकार्ड किया जाता है। वाद विवाद के अधिवेशनवार छपे हुए खंड हिंदी तथा अंग्रेजी भाषा में उपलब्ध होते हैं।

संसद के कार्य का संचालन करने की भाषाएं हिंदी तथा अंग्रेजी हैं। किंतु पीठासीन अधिकारी ऐसे सदस्य को, जो हिंदी या अंग्रेजी में अपनी पर्याप्त अभिव्यक्ति नहीं कर सकता हो, अपनी मातृ–भाषा में संसद को संबोधित करने की अनुमति दे सकते हैं। दोनों सदनों में 12 भाषाओं को हिंदी तथा अंग्रेजी में साथ साथ भाषांतर करने की सुविधाएं उपलब्ध हैं।

संसद में प्रश्न पूछना

सरकार अपनी प्रत्येक भूल चूक के लिए संसद के प्रति और संसद के द्वारा लोगों के प्रति उत्तरदायी होती है। सदन के सदस्य इस अधिकार का प्रयोग, अन्य

बातों के साथ साथ, संसदीय प्रश्नों के माध्यम से करते हैं। संसद सदस्यों को लोक महत्व के मामलों पर सरकार के मंत्रियों से जानकारी प्राप्त करने के लिए पूछने का अधिकार होता है। जानकारी प्राप्त करना प्रत्येक गैर–सरकारी सदस्य का संसदीय अधिकार है।

संसद सदस्य के लिए लोगों के प्रतिनिधि के रूप में यह आवश्यक होता है कि उसे अपनी जिम्मेदारियों के पालन के लिए सरकार के क्रियाकलापों के बारे में जानकारी हो। प्रश्न पूछने का मूल उद्देश्य लोक महत्व के किसी मामले पर जानकारी प्राप्त करना और तथ्य जानना है।

दोनों सदनों में प्रत्येक बैठक के प्रारंभ में एक घंटे तक प्रश्न किए जाते हैं। और उनके उत्तर दिए जाते हैं। इसे 'प्रश्नकाल' कहा जाता है। इसके अतिरिक्त, खोजी और अनुपूरक प्रश्न पूछने से मंत्रियों का भी परीक्षण होता है कि वे अपने विभागों के कार्यकरण को कितना समझते हैं। प्रश्नकाल संसद की कार्यवाहियों का सबसे अधिक दिलचस्प अंग है। लोगों के लिए समाचार पत्रों के लिए और स्वयं सदस्यों के लिए कोई अन्य कार्य इतनी दिलचस्पी पैदा नहीं करता जितनी कि प्रश्नकाल पैदा करता है। इस काल के दौरान सदन का वातावरण अनिश्चित होता है।

कभी अचानक तनाव का बवंडर उठ खड़ा होता है तो कभी कहकहे लगने लगते हैं। कभी कभी किसी प्रश्न पर होने वाले कटु तर्क–वितर्क से उत्तेजना पैदा होती है। ऐसी हालत सदस्यों या मंत्रियों की हाजिर–जवाबी और विनोदप्रियता से दूर हो जाती है।

यही कारण है कि प्रश्नकाल के दौरान न केवल सदन कक्ष बल्कि दर्शक एवं प्रेस गैलरियां भी सदा लगभग भरी रहती हैं।

कुछ प्रश्नों का मौखिक उत्तर दिया जाता है। इन्हें तारांकित प्रश्न कहा जाता है। अतारांकित प्रश्नों का लिखित उत्तर दिया जाता है।

यह बात निश्चित रूप से कही जा सकती है कि सदस्य प्रश्न पूछने के अधिकार का प्रयोग करने में भारी रूचि दिखाते रहे हैं। चूंकि प्रश्नों की प्रक्रिया अपेक्षतः सरल और आसान है। अतः यह संसदीय प्रक्रिया के अन्य उपायों की तुलना में संसद सदस्यों में अधिकाधिक प्रिय होती जा रही है।

शून्यकाल (जीरो आवर)

संसद के दोनों सदनों में प्रश्नकाल के ठीक बाद का समय आमतौर पर

'शून्यकाल' अथवा जीरो आवर के नाम से जाना जाने लगा है। यह एक से अधिक अर्थों में शून्यकाल होता है।

12 बजे दोपहर का समय न तो मध्याह्न पूर्व का समय होता है और न ही मध्याह्न पश्चात का समय। 'शून्यकाल' 12 बजे प्रारंभ होने के कारण इस नाम से जाना जाता है इसे 'आवर' भी कहा गया क्योंकि पहले 'शून्यकाल' पूरे घंटे तक चलता था, अर्थात 1 बजे दिन में सदन का दिन के भोजन के लिए अवकाश होने तक।

यह कोई नहीं कह सकता कि इस काल के दौरान कौन–सा मामला उठ खड़ा हो या सरकार पर किस तरह का आक्रमण कर दिया जाए। नियमों में 'शून्यकाल' का कहीं भी कोई उल्लेख नहीं है। प्रश्नकाल के समाप्त होते ही सदस्यगण ऐसे मामले उठाने के लिए खड़े हो जाते हैं जिनके बारे में वे महसूस करते हैं कि कार्यवाही करने में देरी नहीं की जा सकती। हालाँकि इस प्रकार मामले उठाने के लिए नियमों में कोई उपबंध नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रथा के पीछे यही विचार रहा है कि ऐसे नियम जो राष्ट्रीय महत्व के मामले या लोगों की गंभीर शिकायतों संबंधी मामले सदन में तुरंत उठाए जाने में सदस्यों के लिए बाधक होते हैं, वे निरर्थक हैं।

नियमों की दृष्टि से तथाकथित 'शून्यकाल' एक अनियमितता है। मामले चूंकि बिना अनुमति के या बिना पूर्व सूचना के उठाए जाते हैं अतः इससे सदन का बहुमूल्य समय व्यर्थ जाता है। इससे सदन के विधायी, वित्तीय और अन्य नियमित कार्य का अतिक्रमण होता है। अब तो शून्यकाल में उठाये जाने वाले कुछ मामलों की पहले से दी गई सूचना के आधार पर, अध्यक्ष की अनुमति से, एक सूची भी बनने लगी है।

संसद में जनहित के मामले

संसद के दोनों सदनों के नियमों में लोक महत्व के मामले बिना देरी के और कई प्रकार से उठाने की व्यवस्था है। जो विभिन्न प्रक्रियाएं प्रत्येक सदस्य को उपलब्ध रहती हैं वे इस प्रकार हैं।

स्थगन प्रस्ताव

इसके द्वारा लोक सभा के नियमित काम–काज को रोककर तत्काल महत्वूपर्ण मामले पर चर्चा कराई जा सकती है।

ध्यानाकर्षण

इसके द्वारा कोई भी सदस्य सरकार का ध्यान तत्काल महत्व के मामले की और दिला सकता है। मंत्री को उस मामले में बयान देना होता है। ध्यानाकर्षण करने वाले प्रत्येक सदस्य को एक प्रश्न पूछने का अधिकार होता है।

आपातकालीन चर्चाएं

इनके द्वारा तत्काल महत्व के प्रश्नों पर एक घंटे की चर्चा की जा सकती है। हालाँकि इस पर मतदान नहीं होता।

विशेष उल्लेख

हमारे निर्वाचित प्रतिनिधि किस तरह ऐसे मामले उठाने का प्रयास करते हैं जिनका नियमों एवं विनियमों की व्याख्या से कोई संबंध नहीं होता। लेकिन ये मामले उस समय उन्हें और उनके निर्वाचन क्षेत्र के लोगों को उत्तेजित कर रहे होते हैं। जो मामले व्यवस्था के प्रश्न नहीं होते या जो प्रश्नों, अल्प–सूचना प्रश्नों, ध् यानाकर्षण प्रस्तावों आदि से संबंधित नियमों के अधीन नहीं उठाए जा सकते, वे इसके अधीन उठाए जाते हैं।

प्रस्ताव (मोशन)

सदन लोक महत्व के विभिन्न मामलों पर अनेक फैसले करता है और अपनी राय व्यक्त करता है। कोई भी सदस्य एक प्रस्ताव के रूप में कोई सुझाव सदन के समक्ष रख सकता है। जिसमें उसकी राय या इच्छा दी गई हो। यदि सदन उसे स्वीकार कर लेता है तो वह समूचे सदन की राय या इच्छा बन जाती है। अंतरू मोटे तौर पर 'प्रस्ताव' सदन का फैसला जानने के लिए सदन के सामने लाया जाता है।

प्रस्ताव वास्तव में संसदीय कार्यवाही का आधार होते हैं। लोक महत्व का कोई भी मामला किसी प्रस्ताव का विषय हो सकता है। प्रस्ताव भिन्न–भिन्न सदस्यों द्वारा भिन्न–भिन्न प्रयोजनों से पेश किए जा सकते हैं। प्रस्ताव मंत्रियों द्वारा पेश किए जा सकते हैं और गैर–सरकारी सदस्यों द्वारा भी। गैर–सरकारी सदस्यों द्वारा पेश किए जाने वाले प्रस्तावों का उद्देश्य सामान्यतः किसी मामले पर सरकार की राय या विचार जानना होता है।

संकल्प

संकल्प भी एक प्रक्रियागत उपाय है यह आम लोगों के हित के किसी मामले

पर सदन में चर्चा उठाने के लिए सदस्यों और मंत्रियों को उपलब्ध है। सामान्य रूप के प्रस्तावों के समान संकल्प, राय या सिफारिश की घोषणा के रूप में हो सकता है। या किसी ऐसे अन्य रूप में हो सकता है जैसा कि अध्यक्ष उचित समझे।

अविश्वास प्रस्ताव

मंत्रिपरिषद तब तक पदासीन रहती है जब तक उसे लोक सभा का विश्वास प्राप्त हो। लोक सभा द्वारा मंत्रिपरिषद में अविश्वास व्यक्त करते ही सरकार को संवैधानिक रूप से पद छोड़ना होता है। नियमों में इस आशय का एक प्रस्ताव पेश करने का उपबंध है जिसे 'अविश्वास प्रस्ताव' कहा जाता है। राज्यसभा को अविश्वास प्रस्ताव पर विचार करने की शक्ति प्राप्त नहीं है।

निंदा प्रस्ताव

निंदा प्रस्ताव अविश्वास के प्रस्ताव से भिन्न होता है। अविश्वास के प्रस्ताव में उन कारणों का उल्लेख नहीं होता जिन पर वह आधारित हो। परंतु निंदा प्रस्ताव में ऐसे कारणों या आरोपों का उल्लेख करना आवश्यक होता है। यह प्रस्ताव कतिपय नीतियों और कार्यों के लिए सरकार की निंदा करने के इरादे से पेश किया जाता है। निंदा प्रस्ताव मंत्रिपरिषद के विरूद्ध या किसी एक मंत्री के विरूद्ध या कुछ मंत्रियों के विरूद्ध पेश किया जाता है। उसमें किसी मंत्री या मंत्रियों की विफलता पर सदन द्वारा खेद, रोष या आश्चर्य प्रकट किया जाता है।

संसद में बजट

सरकार को शासन, सुरक्षा और जन कल्याण के बहुत से काम करने होते हैं। इन सबके लिए बहुत साधन चाहिए। ये आएं कहाँ से? सरकार जनता से कर वसूलती है। जरूरत पड़ने पर कर्जे भी लेती है। क्योंकि हम संसदीय व्यवस्था में रहते हैं, सरकार के लिए यह जरूरी है कि कोई भी कर लगाने या कोई भी खर्चा करने से पहले वह संसद की मंजूरी ले। इस मंजूरी को लेने के लिए ही हर वर्ष सरकार एक बजट यानी पूरे साल की आमदनी और खर्चे का लेखा जोखा संसद में पेश करती है।

रेल बजट और सामान्य बजट अलग अलग पेश किए जाते हैं। सामान्य बजट प्रायः फरवरी के अंतिम कार्य दिवस पर लाया जाता है। रेल बजट उससे कुछ दिन पहले आ जाता है। वित्तीय वर्ष इस समय प्रत्येक साल की पहली अप्रैल से आरंभ होता है। बजट में इस आशय का प्रस्ताव होता है कि आने वाले साल के दौरान

किस मद पर कितना धन खर्च किया जाना है। उसमें कितना धन किस तरीके से आएगा या कहाँ से जुटाया जाएगा। बजट के आगामी वर्ष के लिए अनुदान दिए जाते हैं। सरकार को अपनी वित्तीय और आर्थिक नीतियों तथा कार्यक्रमों और उनकी व्याख्या करने का अवसर मिलता है। साथ ही, संसद को उन पर विचार करने और उनकी आलोचना करने का भी अवसर मिलता है।

बजट पास करने की प्रक्रिया में संसद के दोनों सदनों में गंभीर एवं पूर्ण चर्चा होती है। यह बजट पेश किए जाने के कुछ दिन बाद होती है। चर्चा सामान्य वाद विवाद से आरंभ होती है। यह संसद के दोनों सदनों में तीन या चार दिन तक चलती है। प्रथा यह है कि इस अवस्था में सदस्य सरकार की राजकोषीय और आर्थिक नीतियों के सामान्य पहलुओं पर ही विचार करते हैं। कर लगाने तथा खर्च के ब्यौरे में नहीं जाते। इस प्रकार सामान्य वाद विवाद से प्रत्येक सदन को अपने विचार व्यक्त करने का अवसर मिलता है।

सरकार को भी आभास हो जाता है कि किसी प्रस्ताव विशेष के प्रति बाद की अवस्थाओं में क्या प्रतिक्रिया होगी। यह ध्यान देने की बात है कि राज्यसभा को सामान्य चर्चा के अलावा बजट से कोई सरोकार नहीं होता। मांगों पर मतदान केवल लोक सभा में होता है। दूसरी अवस्था अनुदानों की मांगों पर चर्चा और मतदान की है। सामान्यतः प्रत्येक मंत्रालय के लिए प्रस्तावित अनुदानों के लिए अलग मांगे रखी जाती हैं। इन 'मांगो' का संबंध बजट के व्यय वाले भाग से होता है। इनका स्वरूप कार्यपालिका द्वारा लोक सभा के लिए किए गए निवेदन का है कि मांगी गई राशि को खर्च करने का अधिकार दिया जाए।

मांगो पर चर्चा रूचिपूर्ण होती है। चर्चा के दौरान मंत्रालय की नीतियों और क्रियाकलापों की बारीकी से छानबीन की जाती है। अनुदानों की मांगों के मूल प्रस्ताव के सहायक प्रस्ताव पेश करके सदस्य ऐसा कर सकते हैं। इन सहायक प्रस्तावों को संसदीय भाषा में 'कटौती प्रस्ताव' कहा जाता है।

लेखानुदान

बजट पास करने की प्रक्रिया बजट पेश किए जाने से इस पर चर्चा करने और अनुदानों की मांगे स्वीकृत करने और विनियोग तथा वित्त विधोयकों के पास होने तक सामान्यतः चालू वित्तीय वर्ष के आरंभ होने के बाद तक चलती रहती है। जब तक संसद, मांगें स्वीकृत नहीं कर लेती तब तक के लिए यह आवश्यक है कि देश का प्रशासन चलाने के लिए सरकार के पास पर्याप्त धन उपलब्ध हो। इसलिए

'लेखानुदान' के लिए विशेष उपबंध किया गया है। जिसके द्वारा लोकसभा को शक्ति दी गई है कि वह बजट की प्रक्रिया पूरी होने तक किसी वित्तीय वर्ष के एक भाग के लिए पेशगी अनुदान दे सकती है।

कानून निर्माण प्रक्रिया

कानून बनाना संसद का प्रमुख काम माना जाता है। इसके लिए पहल अधिकांशतः कार्यपालिका द्वारा की जाती है। सरकार विधायी प्रस्ताव पेश करती है। उस पर चर्चा तथा वाद विवाद के पश्चात संसद उस पर अनुमोदन की अपनी मुहर लगाती है।

सभी कानूनी प्रस्ताव विधेयक के रूप में संसद में पेश किए जाते हैं। विधेयक विधायी प्रस्ताव का मसौदा होता है। विधेयक संसद के किसी एक सदन में सरकार द्वारा या किसी गैर–सरकारी सदस्य द्वारा पेश किया जा सकता है। इस प्रकार मोटे तौर पर, विधेयक दो प्रकार के होते हैं– (क) सरकारी विधेयक और (ख) गैर–सरकारी सदस्यों के विधेयक। विधि का रूप लेने वाले अधिकांश विधेयक सरकारी विधेयक होते हैं। वैसे तो गैर सरकारी सदस्यों के बहुत कम विधेयक विधि का रूप लेते हैं। फिर भी उनके द्वारा यह बात सरकार और लोगों के ध्यान में लाई जाती है कि मौजूदा कानून में संशोधन करने या कोई आवश्यक विधान बनाने की आवश्यकता है।

विधेयक का मसौदा उस विषय से संबंधित सरकार के मंत्रालय में विधि मंत्रालय की सहायता से तैयार किया जाता है। मंत्रिमंडल के अनुमोदन के बाद इसे संसद के सामने लाया जाता है। संबंधित मंत्री द्वारा उसे संसद के दोनों सदनों में से किसी भी सदन में पेश किया जा सकता है। केवल धन विधेयक के मामले में यह पाबंदी है कि वह राज्यसभा में पेश नहीं किया जा सकता।

अधिनियम का रूप लेने से पूर्व विधेयक को संसद में विभिन्न अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है। प्रत्येक विधेयक के प्रत्येक सदन में तीन वचन होते हैं। अर्थात पहला वाचन, दूसरा वाचन और तीसरा वाचन।

विधेयक 'पेश करना,' विधेयक का पहला वाचन है। प्रथा के अनुसार इस अवस्था में चर्चा नहीं की जाती है। विधेयक का दूसरा वाचन सबसे अधिक विस्तृत एवं महत्वपूर्ण अवस्था है क्योंकि इसी अवस्था में इसकी विस्तृत एवं बारीकी से जांच की जाती है।

जब विधेयक के सभी खंडो पर और अनुसूचियों पर, यदि कोई हों, सदन विचार कर उन्हें स्वीकृत कर लेता है। तब मंत्री यह प्रस्ताव कर सकता है कि विधेयक को पास किया जाए। यह तीसरा वाचन कहलाता है। जिस सदन में विधेयक पेश किया गया हो उसमें पास किए जाने के बाद उसे सहमति के लिए दूसरे सदन में भेजा जाता है। वहाँ विधेयक फिर इन तीनों अवस्थाओं में से गुजरता है।

किसी विधेयक पर दोनों के बीच असहमति के कारण गतिरोध होने पर एक असाधारण स्थिति उत्पन्न हो जाती है। जिसका समाधान दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में होता है। जब दोनों सदनों द्वारा कोई विधेयक अलग अलग या संयुक्त बैठक में पास कर दिया जाता है तो उसे राष्ट्रपति के पास भेजा जाता है। यदि राष्ट्रपति अनुमति प्रदान कर देता है तो अनुमति की तिथि से विधेयक अधिनियम बन जाता है।

संशोधन के द्वारा संविधान के किसी भी अनुच्छेद में बदलाव लाया जा सकता है। किंतु उच्चतम न्यायालय के निर्णय के अनुसार संविधान के मूल ढांचे या मूल तत्वों को नष्ट या न्यून करने वाला कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता।

संसदीय विशेषाधिकार

संसदीय विशेषाधिकार वे विशिष्ट अधिकार हैं जो संसद के दोनों सदनों को, उसके सदस्यों को और समितियों को प्राप्त है। विशेषाधिकार इस दृष्टि से दिए जाते हैं कि संसद के दोनों सदन, उसकी समितियां और सदस्य स्वतंत्र रूप से काम कर सकें। उनकी गरिमा बनी रहे, परंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि कानून की नजरों में साधारण नागरिकों के मुकाबले में विशेषाधिकार प्राप्त सदस्यों की स्थिति भिन्न है। जहाँ तक विधियों के लागू होने का संबंध है, सदस्य लोगों के प्रतिनिधि होने के साथ साथ साधारण नागरिक भी होते हैं। मूल विधि यह है कि संसद सदस्यों सहित सभी नागरिक कानून की नजरों में बराबर माने जाने चाहिए। जो दायित्व अन्य नागरिकों के हों, वही उनके भी होते हैं और शायद सदस्य होने के नाते कुछ अधिक होते हैं।

संसदों का सबसे महत्वपूर्ण विशेषाधिकार है सदन और उसकी समितियों में पूरी स्वतंत्रता के साथ अपने विचार रखने की छूट। संसद के किसी सदस्य द्वारा कही गई किसी बात या दिए गए किसी मत के संबंध में उसके विरूद्ध किसी न्यायालय में कोई कार्यवाही नहीं की जा सकती। संसदीय विशेषाधिकारों की सूचियां तैयार की जा सकती हैं। वास्तव में ये तैयार भी की गईं हैं परंतु ऐसी कोई भी सूची पूरी नहीं है। थोड़े में कह सकते हैं कि कोई भी वह काम जो सदन के,

उसकी समितियों के या उसके सदस्यों के काम में किसी प्रकार की बाधा डाले वह संसदीय विशेषाधिकार का हनन करता है। उदाहरण के लिए, कोई सदस्य न केवल उस समय गिरफ्तार नहीं किया जा सकता जबकि उस सदन का, जिसका कि वह सदस्य हो, अधिवेशन चल रहा हो या जबकि उस संसदीय समिति की, जिसका वह सदस्य हो, बैठक चल रही हो, या जबकि दोनों सदनों की संयुक्त बैठक चल रही हो, या जबकि दोनों सदनों की संयुक्त बैठक चल रही हो। संसद के अधिवेशन के प्रारंभ से 40 दिन पहले और उसकी समाप्ति से 40 दिन बाद या जबकि वह सदन को आ रहा हो या सदन के बाहर जा रहा हो, तब भी उसे गिरफ्तार नहीं किया जा सकता।

संसद के परिसरों के भीतर, अध्यक्ष सभापति की अनुमति के बिना, दीवानी या आपराधिक कोई कानूनी 'समन' नहीं दिए जा सकते हैं। अध्यक्ष सभापति की अनुमति के बिना संसद भवन के अंदर किसी को भी गिरफ्तार नहीं किया जा सकता है। क्योंकि संसद के परिसरों में केवल संसद के सदन के या अध्यक्ष सभापति के आदेशों का पालन होता है। यहाँ अन्य किसी सरकारी प्राधिकारी के या स्थानीय प्रशासन के आदेश का पालन नहीं होता।

संसद का प्रत्येक सदन अपने विशेषाधिकार का स्वयं ही रक्षक होता है। विशेषाधिकार भंग करने या सदन की अवमानना करने वाले को भर्त्सना करके या ताड़ना करके या निर्धारित अवधि के लिए कारावास द्वारा दंडित कर सकता है। स्वयं अपने सदस्यों के मामले में सदन अन्य दो प्रकार के दंड दे सकता है, अर्थात सदन की सेवा से निलंबित करना और निकाल देना, किसी सदस्य को एक निध ारित अवधि के लिए सदन की सेवा से निलंबित किया जा सकता है। किसी अति गंभीर मामले में सदन से निकाला जा सकता है।

सदन अपराधियों को ऐसी अवधि के लिए कारावास का दंड दे सकता है जो साधारणतः सदन के अधिवेशन की अवधि से अधिक नहीं होती। जैसे ही सदन का सत्रावसान होता है, बंदी को मुक्त कर दिया जाता है। दर्शकों द्वारा गैलरी में नारे लगाकर और अथवा इश्तिहार फेंककर सदन की अवमानना करने के कारण, दोनों सदनों ने, समय समय पर, अपराधियों को सदन के उस दिन स्थगित होने तक कारावास का दंड दिया है।

सदन का दांडिक क्षेत्र अपने सदनों तक और उनके सामने किए गए अपराधों तक ही सीमित न होकर सदन की सभी अवमाननाओं पर लागू होता है।

चाहे अवमानना सदस्यों द्वारा की गई हो या ऐसे व्यक्तियों द्वारा जो सदस्य न हों। इससे भी कोई अंतर नहीं पड़ता कि अपराध सदन के भीतर किया गया है या उसके परिसर से बाहर।

सदन का विशेषाधिकार भंग करने या उसकी अवमानना करने के कारण व्यक्तियों को दंड देने की सदन की यह शक्ति संसदीय विशेषाधिकार की नींव है।

सदन की ऐसी पंरपरा भी रही है कि सदन का विशेषाधिकार भंग करने या सदन की अवमानना करने के दोषी व्यक्तियों द्वारा स्पष्ट रूप से और बिना किसी शर्त के दिल से व्यक्त किया गया खेद सदन द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है। ऐसे में साधारणतः सदन अपनी गरिमा को देखते हुए ऐसे मामलों पर आगे कार्यवाही न करने का फैसला करता है।

सदस्यों के वेतन एवं भत्ते

दोनों सदनों के सदस्य ऐसे वेतन और भत्ते, जिन्हें संसद समय समय पर, विधि द्वारा तय करे, पाने के हकदार है। संसद ने संसद सदस्य (वेतन, भत्ते और पेंशन) अधिनियम के अधीन सदस्यों को पेंशन दिए जाने की स्वीकृति दी है। चार वर्ष के सेवाकाल वाले प्रत्येक सदस्य तो एक हजार चार सौ रूपये प्रति मास की पेंशन दी जाती है। इसके अतिरिक्त पाँच वर्ष के बाद की सेवा के प्रत्येक वर्ष के लिए 250 रूपये और दिए जाते हैं।

प्रत्येक सदस्य 1500 रूपये प्रतिमास का वेतन तथा ऐसे स्थान पर, जहाँ संसद के किसी सदन का अधिवेशन या समिति की बैठक हो, ड्यूटी पर निवास के दौरान 200 रूपये प्रतिदिन का भत्ता प्राप्त करने का हकदार है। मासिक वेतन तथा दैनिक भत्ते के अलावा प्रत्येक सदस्य 3000 रूपये मासिक का निर्वाचन क्षेत्र भत्ता और 1000 रूपये प्रतिमास की दर से कार्यालय व्यय प्राप्त करने का हकदार है।

यात्रा संबंधी सुविधाएं प्रत्येक सदस्य निम्नलिखित यात्रा–भत्ते पाने का हकदार है–

(क) **रेल द्वारा यात्रा के लिए–** एक प्रथम श्रेणी के तथा एक द्वितीय श्रेणी के किराए के बराबर रकम

(ख) **विमान द्वारा यात्रा के लिए–** प्रत्येक ऐसी यात्रा के लिए विमान किराए के सवा गुना के बराबर रकम

(ग) **सड़क द्वारा यात्रा के लिए–** पाँच रूपये प्रति किलोमीटर तथा स्टीमर द्वारा यात्रा के लिए उच्चतम श्रेणी के किराए के अतिरिक्त उसका 3–5 भाग।

इसके अलावा, प्रत्येक सदस्य को प्रतिवर्ष देश के अंदर कहीं भी अपनी पत्नी अपने पति या सहचर के साथ 28 एक तरफा विमान यात्राएं करने की छूट होती है। प्रत्येक सदस्य को देश के अंदर कहीं भी, कितनी भी बार, वातानुकूलित श्रेणी में यात्रा के लिए स्वयं तथा सहचर के लिए एक रेलवे पास भी मिलता है। पत्नी–पति के लिए एक अलग से पास भी मिल सकता है।

टेलीफोन – प्रत्येक सदस्य निशुल्क टेलीफोन–एक दिल्ली में तथा दूसरा अपने निवास स्थान पर लगवानें का हकदार है। इसके अलावा, उसे प्रतिवर्ष निशुल्क 50,000 स्थानीय काल करने की छूट होती है।

वास सुविधा तथा वाहन – प्रत्येक सदस्य को दिल्ली में मकान दिया जाता है। फ्लैटों के लिए कोई शुल्क नहीं है। जबकि बंगलों के लिए नाममात्र लाईसेंस शुल्क लगाया जाता है। कतिपय सीमाओं में बिजली तथा पानी निःशुल्क होते हैं।

प्रत्येक सदस्य को उसके कार्यकाल के दौरान वाहन खरीदने के लिए अग्रिम–राशि दी जाती है।

अन्य सुविधाएँ – सदस्यों को जो अन्य सुविधाएं प्रदान की जाती हैं उनमें आशुलिपिक तथा टंकण पूल, आयकर में राहत, कैंटीन, जलपान और खानपान, क्लब, कामन रूम, बैंक, डाकघर, रेलवे तथा हवाई बुकिंग तथा आरक्षण, बस परिवहन, एल पी जी सेवा, विदेशी मुद्रा का कोटा, लॉकर, सुपर बाजार आदि शामिल है। संसद परिसर में एकमात्र सदस्यों के लिए एक सुसज्जित प्राथमिक चिकित्सा अस्पताल भी है।

संसद परिसर

संसद की इमारतों में संसद भवन, संसदीय सौध, स्वागत कार्यालय और निर्माणाधीन संसदीय ज्ञानपीठ अथवा संसद ग्रंथालय सम्मिलित है। इन सभी को मिलाकर संसद परिसर कहा जाता है इसमें लंबे–चौड़े लान, जलाशय, फव्वारे और सड़कें बनी हुई हैं। यह सारा परिसर सजावटी लाल पत्थर की दीवारों तथा लोहे के जंगलों और लोहे के ही विशाल दरवाजों से घिरा हुआ है।

9

केंद्रीय मंत्रिपरिषद

केंद्रीय मंत्रिपरिषद या संघ मंत्रिपरिषद को केंद्र सरकार की कार्यपालिका की रीढ़ माना जाता है। यह देश के विषय में निर्णय लेने वाली केंद्रीय संस्था के रूप में राष्ट्रीय नीति को आकार देने और उसके कार्यान्वयन को सुनिश्चित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

केंद्रीय मंत्रिपरिषद क्या है?

केंद्रीय मंत्रिपरिषद, जिसे संघ मंत्रिपरिषद के रूप में भी जाना जाता है, एक केंद्रीय निकाय है जो केंद्र सरकार की कार्यपालिका शाखा का हिस्सा है। यह भारतीय संविधान द्वारा अपनाई गई संसदीय प्रणाली के तहत वास्तविक कार्यकारी प्राधिकरण है। मंत्रिपरिषद भारत के राष्ट्रपति को सलाह देने वाली प्रमुख सलाहकार निकाय के रूप में कार्य करती है। यह निर्णय लेने के साथ–साथ सरकारी नीतियों के निर्माण और कार्यान्वयन में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

केंद्रीय मंत्रिपरिषद से संबंधित संवैधानिक प्रावधान

केंद्रीय मंत्रिपरिषद से संबंधित महत्त्वपूर्ण संवैधानिक प्रावधानों को निम्न तालिका में सूचीबद्ध किया गया है।

अनुच्छेद	विषय–वस्तु
अनुच्छेद 74	भारत के राष्ट्रपति को सहायता और सलाह देने के लिए मंत्रिपरिषद।

अनुच्छेद 75	मंत्रियों के लिए अन्य प्रावधान
अनुच्छेद 77	भारत सरकार के कार्यों का संचालन
अनुच्छेद 78	राष्ट्रपति को सूचना उपलब्ध कराने आदि के संबंध में प्रधानमंत्री के कर्तव्य
अनुच्छेद 88	सदनों के संबंध में मंत्रियों के अधिकार

उपरोक्त संवैधानिक प्रावधानों पर बाद के अनुभागों में विस्तार से चर्चा की गई है–

अनुछेद 74– राष्ट्रपति की सहायता और सलाह देने के लिए मंत्रिपरिषद

- प्रधानमंत्री के नेतृत्व में एक मंत्रिपरिषद होगी, जो राष्ट्रपति के कार्यों में सहायता और सलाह देगी। राष्ट्रपति अपने कार्यों के अभ्यास में ऐसी सलाह के अनुसार कार्य करेंगे।
- राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद को ऐसी सलाह पर पुनर्विचार करने के लिए निर्देश दे सकते हैं।
    - यद्यपि, राष्ट्रपति पुनर्विचार के पश्चात् दी गई सलाह के अनुसार कार्य करने के लिए बाध्य है।
- मंत्रियों द्वारा राष्ट्रपति को दी गई सलाह की किसी भी न्यायालय में जांच नहीं की जाएगी।

अनुच्छेद 75– मंत्रियों के संबंध में अन्य प्रावधान

- प्रधानमंत्री को राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाएगा और अन्य मंत्रियों को राष्ट्रपति द्वारा प्रधानमंत्री की सलाह पर नियुक्त किया जाएगा।
- मंत्रिपरिषद में मंत्रियों की कुल संख्या प्रधानमंत्री सहित लोकसभा की कुल सदस्य संख्या के 15: से अधिक नहीं होनी चाहिए। यह प्रावधान 2003 के 91वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा जोड़ा गया था।
- संसद के किसी भी सदन का सदस्य, जिसे दल–बदल के आधार पर अयोग्य घोषित कर दिया गया है, वह सदस्य मंत्री के रूप में नियुक्त किए जाने के लिए भी अयोग्य हो जाता है।
    - यह प्रावधान भी 2003 के 91वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा

जोड़ा गया था।

- मंत्री राष्ट्रपति के प्रसादपर्यन्त अपने पद को धारण करते हैं।
- केंद्रीय मंत्रिपरिषद लोकसभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होती है।
- राष्ट्रपति मंत्रियों को पद और गोपनीयता की शपथ दिलाते हैं।
- कोई भी मंत्री जो लगातार छह महीने की अवधि तक संसद सदस्य नहीं है, वह इस अवधि की समाप्ति के पश्चात् मंत्री नहीं रह जाते।
- मंत्रियों के वेतन और भत्ते का निर्धारण संसद द्वारा किया जाता है।

अनुच्छेद 77– भारत सरकार के कार्यों का संचालन

- भारत सरकार की सभी कार्यकारी कार्रवाइयाँ राष्ट्रपति के नाम पर की जाएंगी।
- राष्ट्रपति के नाम से पारित आदेशों एवं अन्य दस्तावेजों को इस प्रकार अधिप्रमाणित किया जाएगा जैसा कि राष्ट्रपति द्वारा बनाए जाने वाले नियमों में निर्दिष्ट हों।
- इस तरह से प्रमाणित किसी आदेश या दस्तावेज की वैधता को इस आधार पर सवाल नहीं उठाया जाएगा कि यह राष्ट्रपति द्वारा निर्मित या निष्पादित आदेश या उपकरण नहीं है।
- राष्ट्रपति भारत सरकार के कार्यों को अधिक सुविधाजनक एवं सुगम बनाने के लिए और साथ ही उक्त कार्यों को मंत्रियों के बीच आवंटन करने के लिए नियम बनाएंगे।

अनुच्छेद 78– प्रधान मंत्री के कर्तव्य

प्रधानमंत्री का यह कर्तव्य होगारूराष्ट्रपति द्वारा मांगें

- संघ के प्रशासन से संबंधित मंत्रिपरिषद के सभी निर्णयों और विधान प्रस्तावों के विषय में राष्ट्रपति को सूचित करना।
- संघ के प्रशासन से संबंधित ऐसी जानकारी और विधान प्रस्ताव प्रस्तुत करना,जोकि राष्ट्रपति द्वारा मांगें गई हों।
- यदि राष्ट्रपति को आवश्यकता है, तो वह किसी भी मामले को मंत्रिपरिषद

के विचारार्थ प्रस्तुत करेगा, जिस पर किसी मंत्री द्वारा निर्णय लिया गया है, लेकिन जिस पर मंत्रिपरिषद द्वारा विचार नहीं किया गया है।

अनुच्छेद 88– सदनों के संबंध में मंत्रियों के अधिकार

- प्रत्येक मंत्री को संसद के किसी भी सदन, सदनों की संयुक्त बैठक तथा संसद की किसी भी समिति की कार्यवाही में बोलने और भाग लेने का अधिकार होगा, जिसमें उसे सदस्य के रूप में नामित किया गया है, लेकिन इस अनुच्छेद के आधार पर वह मतदान करने का हकदार नहीं होगा। ।
    - इसका तात्पर्य है कि जो मंत्री संसद के एक सदन का सदस्य है, उसे दूसरे सदन की कार्यवाही में भी बोलने और भाग लेने का अधिकार है। लेकिन वह केवल उस सदन में मतदान कर सकता है जिसका वह सदस्य है।

केंद्रीय मंत्रिपरिषद की संरचना

जैसा कि "मंत्रिपरिषद" शब्द से पता चलता है, केंद्रीय मंत्रिपरिषद मंत्रियों के एक समूह को संदर्भित करता है। इसका नेतृत्व भारत के प्रधान मंत्री करते हैं और इसमें मंत्रियों की निम्नलिखित तीन श्रेणियाँ हैं:–

- कैबिनेट मंत्री,
- राज्य मंत्री, और
- उप मंत्री।

कैबिनेट मंत्री

- कैबिनेट मंत्री में मंत्रियों का ऐसा समूह होता है जो गृह, रक्षा, वित्त आदि जैसे महत्त्वपूर्ण मंत्रालयों का नेतृत्व करते हैं।
- ये मंत्री कैबिनेट के सदस्य होते हैं, इसकी बैठकों में भाग लेते हैं और सरकार की नीतियों को निर्धारित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

राज्य मंत्री

- राज्य मंत्री या तोः
    - कैबिनेट मंत्रियों से संबद्ध; या

    - मंत्रालयों/विभागों का स्वतंत्र प्रभार दिया जाता है;
- संलग्नता के मामले में, राज्य मंत्रियों को रू
    - कैबिनेट मंत्रियों के नेतृत्व वाले मंत्रालयों के विभागों का प्रभार; या
    - कैबिनेट मंत्रियों के नेतृत्व वाले मंत्रालयों से संबंधित कार्यों के विशिष्ट मदों (।ससवजजमकॅ चमबपपिब प्जमउे) का आवंटन किया जाता है।
    - उपरोक्त दोनों मामलों में, ये मंत्री कैबिनेट मंत्रियों के निरीक्षण, मार्गदर्शन और साथ ही समग्र प्रभार और उत्तरदायित्व के अधीन कार्य करते हैं।
- स्वतंत्र प्रभार के मामले में, राज्य मंत्री (डपदपेजमते वॅ जंजम) अपने मंत्रालयों/ विभागों के संबंध में वही कार्य करते हैं तथा उन्ही शक्तियों का प्रयोग करते हैं जो कैबिनेट मंत्री करते हैं।
    - यद्यपि, ये कैबिनेट के सदस्य नहीं होते हैं और जब तक विशेष रूप से आमंत्रित नहीं किए जाते, तब तक इनकी बैठकों में भाग नहीं लेते हैं।

उप मंत्री

- उप मंत्रियों को मंत्रालयों या विभागों का स्वतंत्र प्रभार नहीं दिया जाता है।
- बल्कि, वे कैबिनेट मंत्रियों या राज्य मंत्रियों से जुड़े होते हैं और उनके कार्यों में उनकी सहायता करते हैं।
- वे कैबिनेट के सदस्य नहीं होते हैं और कैबिनेट की बैठकों में शामिल नहीं होते हैं।

संसदीय सचिव

- संसदीय सचिवों में मंत्रियों की एक अन्य श्रेणी शामिल होती है। यद्यपि, वे केंद्रीय मंत्रिपरिषद के सदस्य नहीं हैं।
- उन्हें भारत के प्रधान मंत्री द्वारा नियुक्त किया जाता है, न कि भारत के राष्ट्रपति द्वारा।

- उनके नियंत्रण में कोई विभाग नहीं है। बल्कि, वे वरिष्ठ मंत्रियों से जुड़े होते हैं और उन्हें अपने कर्तव्यों को निभाने में सहायता करते हैं।

मंत्रियों की नियुक्ति

केंद्रीय मंत्रिपरिषद के मंत्रियों की नियुक्ति के संबंध में संवैधानिक प्रावधान इस प्रकार हैं:–

- प्रधानमंत्री को भारत के राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाता है।
- अन्य मंत्रियों को राष्ट्रपति द्वारा प्रधानमंत्री की सलाह पर नियुक्त किया जाता है।
- इस प्रकार, राष्ट्रपति केवल उन्हीं व्यक्तियों को मंत्री के रूप में नियुक्त कर सकते हैं जिनकी सिफारिश प्रधान मंत्री द्वारा की जाती है।
- कोई व्यक्ति जो संसद के किसी भी सदन का सदस्य नहीं है, उसे भी मंत्री के रूप में नियुक्त किया जा सकता है। लेकिन, 6 महीने के भीतर उन्हें संसद के किसी एक सदन का सदस्य बनना होगा, अन्यथा वह मंत्री नहीं रहेंगें।

मंत्रियों के शपथ और प्रतिज्ञान

भारत के राष्ट्रपति केंद्रीय मंत्रिपरिषद के मंत्रियों को पद और गोपनीयता की शपथ दिलाते हैं।

पद की शपथ

अपने पद की शपथ में, मंत्री शपथ लेते हैं:–

- संविधान के प्रति सच्ची आस्था और निष्ठा रखूँगा।
- भारत की संप्रभुता और अखंडता को अक्षुण्ण रखूँगा।
- बिना किसी भय या पक्षपात, स्नेह या द्वेष के, संविधान और कानून के अनुसार सभी प्रकार के लोगों के साथ न्याय करूंगा, तथा अपने कार्यालय के कर्तव्यों का ईमानदारी और कर्तव्यनिष्ठा से पालन करूंगा।

गोपनीयता की शपथ

अपनी गोपनीयता की शपथ में, मंत्री शपथ लेते हैं:–

- कि वह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से किसी भी ऐसे मामले के बारे में सूचित या प्रकट नहीं करेगा जो उसके विचाराधीन हो या एक केंद्रीय मंत्री के रूप में उसे ज्ञात हो, सिवाय इसके कि ऐसे मंत्री के रूप में उसके कर्तव्यों के उचित निर्वहन के लिए आवश्यक हो।

मंत्रियों के वेतन और भत्ते

- मंत्रिपरिषद के वेतन और भत्ते समय–समय पर संसद द्वारा निर्धारित किए जाते हैं।
- एक मंत्री को वह वेतन और भत्ते मिलते हैं जो संसद सदस्य को देय होते हैं।
- इसके अतिरिक्त, मंत्री को एक मानदेय भत्ता (उनके पद के अनुसार), निःशुल्क आवास, यात्रा भत्ता, चिकित्सा सुविधा आदि भी मिलते हैं।

केंद्रीय मंत्रिपरिषद की भूमिका

केंद्रीय मंत्रिपरिषद की भूमिका को निम्नलिखित बिंदुओं में देखा जा सकता हैः–

- यह केंद्र सरकार का सर्वोच्च निर्णय लेने वाला प्राधिकरण है।
- यह केंद्र सरकार की मुख्य नीति बनाने वाली संस्था है।
- यह केंद्र सरकार का सर्वोच्च कार्यकारी प्राधिकरण है।
- यह केंद्र सरकार का मुख्य समन्वयक है।
- यह राष्ट्रपति को सलाहकार निकाय है।
- यह आपात स्थितियों में मुख्य संकट प्रबंधक के रूप में कार्य करता है।
- यह सभी प्रमुख विधायी और वित्तीय मामलों से संबंधित है।
- यह उच्च नियुक्तियों पर नियंत्रण रखता है।
- यह सभी विदेश नीतियों और मामलों से संबंधित है।

मंत्रियों के उत्तरदायित्व

संवैधानिक प्रावधानों के अनुसार, केंद्रीय मंत्रिपरिषद का हिस्सा बनने वाले

मंत्रियों की दो प्रकार के उत्तरदायित्व होती हैं – सामूहिक उत्तरदायित्व और व्यक्तिगत उत्तरदायित्व। इसके अतिरिक्त, भारतीय संदर्भ में, मंत्रियों का कोई कानूनी उत्तरदायित्व नहीं है।

मंत्रियों के उत्तरदायित्व के संबंध में विवरण निम्नलिखित अनुभागों में बताया गया हैः–

सामूहिक उत्तरदायित्व

अनुच्छेद 75 में सामूहिक उत्तरदायित्व की अवधारणा शामिल है इसके अंतर्गत यह प्रावधान है कि केंद्रीय मंत्रिपरिषद लोकसभा के प्रति सामूहिक रूप से जिम्मेदार है। इसका तात्पर्य है किः

- जब लोकसभा केंद्रीय मंत्रिपरिषद के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पारित करती है, तो सभी मंत्रियों को त्यागपत्र देना पड़ता है, उन मंत्रियों को भी जो राज्यसभा से हैं।
- मंत्रिपरिषद राष्ट्रपति को इस आधार पर लोकसभा को भंग करने की सलाह दे सकती है, कि सदन ईमानदारी से मतदाताओं के विचारों का प्रतिनिधित्व नहीं कर रहें है और नए चुनाव की माँग कर सकती है।
- राष्ट्रपति उस मंत्रिपरिषद की सलाह मानने के लिए बाध्य नहीं है, जिसके विरुद्ध लोकसभा में विश्वासमत पारित हो गया हों।
- कैबिनेट मंत्रियों के निर्णय सभी मंत्रियों के लिए बाध्यकारी होते हैं, भले ही वे इससे असहमत हों। प्रत्येक मंत्री को ऐसे निर्णयोंका समर्थन करना चाहिए और उनका समर्थन संसद के अंदर और बाहर दोनों जगह होना चाहिए।
  - यदि कोई मंत्री ऐसे किसी निर्णय से असहमत है और उसका बचाव करने के लिए तैयार नहीं है, तो उसे अपने पद से त्यागपत्र दे देना चाहिए।

व्यक्तिगत उत्तरदायित्व

- अनुच्छेद 75 में व्यक्तिगत उत्तरदायित्व का भी सिद्धांत शामिल है और इसमें प्रावधान है कि मंत्री राष्ट्रपति के प्रसादपर्यंत पद धारण करते हैं।
- इसका तात्पर्य है कि राष्ट्रपति किसी मंत्री को उस समय भी हटा सकते

है, जब मंत्रिपरिषद को लोकसभा में विश्वासमत भी प्राप्त है।

- यद्यपि, राष्ट्रपति केवल प्रधानमंत्री की सलाह पर ही किसी मंत्री को हटा सकते हैं।

- किसी मंत्री के प्रदर्शन से मतभेद या असंतोष की स्थिति में, प्रधानमंत्री उनसे त्यागपत्र देने के लिए कह सकते है या राष्ट्रपति को उन्हें बर्खास्त करने की सलाह दे सकते हैं।

  - इस अधिकार का प्रयोग करके प्रधानमंत्री सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धांत को बनाए रखने को सुनिश्चित करते हैं।

कोई कानूनी जिम्मेदारी नहीं

- ब्रिटेन में, किसी भी सार्वजनिक कार्य के लिए राजा के प्रत्येक आदेश पर एक मंत्री द्वारा प्रतिहस्ताक्षर किये जाते हैं। यदि आदेश किसी कानून का उल्लंघन करता है, तो मंत्री को न्यायालय में जिम्मेदार और उत्तरदायी ठहराया जाएगा।

- भारत में, मंत्री की विधिक जिम्मेदारी की व्यवस्था का कोई प्रावधान नहीं है। इस प्रकार, यह आवश्यक नहीं है कि सार्वजनिक कार्य के लिए राष्ट्रपति के आदेश को किसी मंत्री द्वारा प्रतिहस्ताक्षरित किया जाए।

केंद्रीय मंत्रिपरिषद द्वारा सलाह की प्रकृति

- 42वें संविधान संशोधन अधिनियम ने मंत्रिपरिषद द्वारा राष्ट्रपति को दी गई सलाह को राष्ट्रपति के लिए बाध्यकारी बना दिया गया था, यद्यपि 44वें संविधान संशोधन अधिनियम के द्वारा यह प्रावधान किया गया कि राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद को सलाह पर एक बार पुनर्विचार के लिए कह सकते हैं, लेकिन पुनर्विचार के पश्चात् राष्ट्रपति को दी गई सलाह बाध्यकारी होगी।

- मंत्रियों द्वारा राष्ट्रपति को दी गई सलाह की प्रकृति की किसी भी न्यायालय द्वारा जांच नहीं की जा सकती है।

  - यह प्रावधान राष्ट्रपति और मंत्रियों के बीच गोपनीयता के शर्तों पर जोर देता है।

मंत्रिपरिषद बनाम कैबिनेट

'मंत्रिपरिषद' और 'कैबिनेट' शब्दों का प्रयोग सामान्यतरू एक–दूसरे के स्थान पर किया जाता है। यद्यपि, वे नीचे दी गई तालिका में दर्शाए अनुसार विभिन्न मामलों में एक–दूसरे से भिन्न होते हैं:–

मंत्रिपरिषद	**कैबिनेट**
यह एक व्यापक निकाय है, जिसमें 60 से 20 मंत्री होते हैं।	यह एक छोटा निकाय है, जिसमें 15 से 70 मंत्री होते हैं।
इसमें तीनों श्रेणी के मंत्री शामिल हैं– कैबिनेट मंत्री, राज्य मंत्री और उप मंत्री।	इसमें केवल कैबिनेट मंत्री शामिल होते हैं। इस प्रकार, यह मंत्रिपरिषद का एक उप–समूह है।
यह सरकारी कामकाज निपटाने के लिए एक निकाय के रूप में बैठक नहीं करता है। इस प्रकार, इसका कोई सामूहिक कार्य नहीं है।	यह सरकारी कामकाज के लेन–देन के संबंध में विचार–विमर्श करने और निर्णय लेने के लिए एक निकाय के रूप में बार–बार और सामान्यतः सप्ताह में एक बार बैठक करते हैं। इस प्रकार, यह निकाय सामूहिक रूप से कार्य करता है।
सैद्धांतिक रूप से मंत्रिपरिषद में सभी शक्तियाँ निहित होती है।	यह व्यवहार में, मंत्रिपरिषद की शक्तियों का प्रयोग करते हैं।
इसके कार्य कैबिनेट द्वारा निर्धारित किए जाते हैं।	यह उन नीतिगत निर्णयों लेकर मंत्रिपरिषद को निर्देश देते हैं जो सभी मंत्रियों के लिए बाध्यकारी होते हैं।
यह कैबिनेट द्वारा लिए गए निर्णयों को लागू करता है।	यह मंत्रिपरिषद द्वारा अपने निर्णयों के कार्यान्वयन की निगरानी करता है।
यह संसद के निचले सदन के प्रति सामूहिक रूप से जिम्मेदार है।	यह संसद के निचले सदन के प्रति मंत्रिपरिषद की सामूहिक जिम्मेदारी को लागू करता है।

किचन कैबिनेट या आंतरिक कैबिनेट

- किचन कैबिनेट, कैबिनेट से छोटा एक अनौपचारिक निकाय है जिसमें

प्रधान मंत्री और उसके कुछ प्रभावशाली सहयोगी होते हैं।

- इसमें न केवल कैबिनेट मंत्री बल्कि प्रधानमंत्री के मित्र और परिवार के सदस्य भी शामिल हो सकते हैं।
- किचन कैबिनेट के लाभ और नुकसान इस प्रकार हैंः–

किचन कैबिनेट के गुण

- यह एक छोटी इकाई होने के कारण एक बड़े मंत्रिमंडल की तुलना में अधिक कुशल निर्णय लेने वालीयह एक बड़े मंत्रिमंडल की तुलना में अधिक बार मिल सकते है और कार्यों को अधिक तेजी से निपटा सकते हैं।
- यह निर्णय लेने में प्रधानमंत्री को गोपनीयता बनाए रखने में मदद करते हैं।

किचन कैबिनेट के अवगुण

- यह कैबिनेट के अधिकार और स्थिति को कम करता है।
- यह बाहरी व्यक्तियों को सरकार के कामकाज में प्रभावशाली भूमिका निभाने की अनुमति देकर कानूनी प्रक्रिया को बाधित करता है।

10
केंद्रीय सचिवालय

केंद्रीय सचिवालय में केंद्र सरकार के सभी मंत्रालय और विभाग शामिल है। अर्थात प्रशासन की दृष्टि केंद्र सरकार विभिन्न मंत्रालयों विभागों में विभक्त है।

केंद्रीय सचिवालय में ऐसे सभी मंत्रालयों विभागों की समष्टि है। एक मंत्रालय में सामान्यतः 2–4 विभाग होते हैं, किंतु किसी–किसी मंत्रालय में कोई विभाग नहीं होता है, जैसे विदेश मंत्रालय।

इस प्रकार कुछ ऐसे विभाग भी हैं जिन्हें किसी मंत्रालय के अधीन नहीं रखा गया है, जैसे–परमाणु ऊर्जा विभाग। मंत्रालयों और विभागों के राजनीतिक प्रमुख मंत्रीगण तथा प्रशासनिक प्रमुख सचिवगण होते हैं।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 77 में केंद्र सरकार के कामकाज को अधिक सुविधाजनक और इन कार्यों को मंत्रियों को सौंपने संबंधी नियम बनाने का अधिकार भारत के राष्ट्रपति को दिया गया है।

यह विभाग विभाजन प्रणाली का आधार है। इसकी विशेषता यह है कि मंत्री को मंत्रालय – विभाग का प्रभारी बनाया जाता है, जो राष्ट्रपति की और से आदेश जारी करता है।

इस प्रकार मंत्रालय विभाग की धारणा का सूत्रपात विभाग–विभाजन (पोर्टफोलियो) प्रणाली से हुआ है। कार्य आबंटन के नियम में निर्दिष्ट मंत्रालयों विभागों के समूह को केंद्रीय सचिवालय के रुप मेँ जाना जाता है।

वर्तमान में केंद्र सरकार के मंत्रालय– विभाग भारत सरकार (कार्यो का बंटवारा) नियमावली 1961 से शासित है।

मंत्रालय की संरचना

केंद्र सरकार के मंत्रालय विशेष की संरचना तीन स्तरीय है।

राजनीतिक प्रमुख अर्थात कैबिनेट मंत्री जिसकी सहायतार्थ राज्यमंत्री और उपमंत्री होते है। किंतु कभी कभी राज्य मंत्री भी स्वतंत्र प्रभार में मंत्रालय विभाग का राजनीतिक प्रमुख होता है।

सचिव की अध्यक्षता में सचिवालय संगठन सचिव लोक सेवक होता है। सचिव के सहायतार्थ संयुक्त सचिव, उपसचिव, अवर सचिव और अन्य कर्मचारी होते हैं। इस प्रकार, सचिवालय– संगठन में दो विशेष घटक– अधिकारी और कार्यालय, कर्मचारियो को निर्देशित और नियंत्रित करने तथा लिपिकीय कार्य को संपादित निष्पादित करने के लिए होते हैं।

विभाग–प्रमुख की अध्यक्षता में कार्यकारी संगठन होता है। इन विभाग प्रमुखों को विभिन्न पदोनामों, जैसे– निदेशक, महानिदेशक, महानिरीक्षक, आयुक्त, महानिरीक्षक, मुख्यनियंत्रक आदि के नाम से जाना जाता है।

विपाटन प्रणाली

भारत में सचिवालय प्रणाली नीति–निर्धारण कार्य को नीति कार्यान्वयन कार्य से अलग रखने के सिद्धांत पर आधारित है।

विभाजन की इस प्रणाली में सचिवालय को केवल नीति निर्धारण कार्य तक सीमित रखा गया है और इस प्रकार सचिवालय नीति के कार्यांवयन कार्य में दखल नहीं दे सकता।

नीति को कार्यरुप दिए जाने का कार्य सचिवालय के बाहर की कार्यपालक एजेंसियों पर छोड़ दिया जाना चाहिए।

विपाटन प्रणाली के लाभ इस प्रकार हैं–

इसमें सचिवालय कर्मी (नीति निर्माता) को नीति नियोजन कार्य में राष्ट्रीय हित, लक्ष्यों और अपेक्षाओं के संबंध में सहायता मिलती है। ऐसा इसलिए है कि वे दिन–प्रतिदिन की प्रशासनिक जिम्मेदारियो से मुक्त हैं।

इस प्रणाली की सहायता से सचिव उन प्रस्तावों की जांच सरकार के विस्तृत दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए निष्पक्ष रुप से कर सकता है, जिन्हें कार्यपालक एजेंसियों ने तैयार किया है। ऐसा इसलिए है कि सचिव समग्र रुप से सरकार का सचिव होता है न की मंत्री मात्र का सचिव। इस प्रणाली से कार्यपालक एजेंसियों को नीतियों का कार्यांवित करने की आजादी मिलती है, क्योंकि इस प्रणाली के तहत सचिव को नीति कार्यान्वयन के कार्य में दखल नहीं देना होता है, अपितु स्वयं को नीति निर्माण कार्य तक ही सीमित रखना होता है। इस प्रकार, यह प्रणाली प्राधिकारों के विष्टिकरण और प्रत्यायोजन को प्रोत्साहित करती है तथा अति विकेंद्रीकरण को दूर रखती है।

इस प्रणाली के द्वारा कानूनों का बंटवारा दो अलग–अलग एजेंसियों में करके सचिवालय के आकार को प्रबंधन की दृष्टि से छोटा करने में मदद मिलती है।

कार्यक्षेत्र के कार्यक्रम क्रियान्वयन का निष्पक्ष मूल्यांकन सचिवालय कर्मियोँ द्वारा किया जा सकता है। इस कार्य की जिम्मेदारी कार्यान्वयन एजेंसियों को नहीँ सौंपी जा सकती।

इस संदर्भ में भारतीय सचिवालय का मॉडल ब्रिटिश व्हाइटहॉल मॉडल से भिन्न है। ब्रिटेन में हर मंत्रालय नीति निर्माण और नीति कार्यान्वयन के लिए दोनो के लिए उत्तरदायी है।

भूमिका और कार्य

सचिवालय एक स्टाफ एजेंसी है। इसका कार्य भारत सरकार को उसकी जिम्मेदारियों और कर्तव्यों के निर्माण में सहयोग एवँ सहायता करना है।

यह सरकार के लिए सूचना भंडार स्वरुप है जो विगत की कार्यवाहियों और कार्यों के प्रकाश में भावी नीतियों, उभरती समस्याओं और वर्तमान कार्यकलापों की जांच कार्य मेँ सरकार की सहायता करता है।

किसी विषय पर सरकारी स्तर पर लिए जाने वाले निर्णय से पहले विषय की विस्तृत जांच परख का काम सचिवालय द्वारा किया जाता है।

शासकीय की पुस्तिका के अनुसार सचिवालय द्वारा मंत्रालयों विभागों से जुड़े निम्नलिखित कार्य किए जाते हैं–

- मंत्री को नीति निर्धारण करने तथा समय–समय पर आवश्यकतानुसार उनमें संशोधन करने में मदद करना
- विधान तथा विनियम और विनिमय बनाना
- क्षेत्रीय नियोजन और कार्यक्रम निरूपण

मंत्रालय विभाग के कार्य से संबंधित व्यापक का बजटीय प्रावधान और नियंत्रण, और संचालनात्मक कार्यों और योजनाओं और उनमें संशोधन से संबंधित प्रशासनिक और वित्तीय अनुमोदन देना अथवा लेना।

कार्यपालक विभागों या अर्धस्वायत्त कार्यक्षेत्रीय एजेंसियों द्वारा नीतियाँ और कार्यक्रमों के संचालन और परिणामों का मूल्यांकन।

नीतियो की व्याख्या और उनके बीच समन्वय स्थापित करना, सरकार की अन्य शाखाओं की सहायता करना तथा राज्य प्रशासन से संपर्क बनाए रखना।

मंत्रालयों विभाग और इसकी कार्यपालक एजेंसीयां इन दोनों कार्मिक और संगठनिक सक्षमता विकसित करने के उपाय करना और,

मंत्री की संसदीय समितियों के जिम्मेदारियों के निर्वहन में सहायता प्रदान करना।

कार्यकाल प्रणाली

सचिवालय में उन पदों को श्रेष्ठ माना गया है जो अधिकारियों द्वारा बनाए गए नियमानुसार, राज्यों (और कुछ केन्द्रीय सेवाओं) से कुछ विशिष्ट समय के लिए आते है तथा अपने कार्यकाल की समाप्ति पर संबद्ध राज्य या सेवाओं में वापस चले जाते हैं।

सरकारी शब्दावली में इसे कार्यकाल प्रणाली कहते हैं। इस प्रकार कार्यकाल प्रणाली के अंतर्गत प्रतिनियुक्त प्रत्येक कर्मचारी –अधिकारी केंद्रीय सचिवालय में निर्धारित अवधि के लिए कार्य करता है, जिनका सचिवालय में अलग अलग पदक्रम होता है। ये पद क्रम इस प्रकार हैं–

- सचिव और संयुक्त सचिव – 5 वर्ष
- उप सचिव – 4 वर्ष
- अवर सचिव – 3 वर्ष

भारत में कार्यकाल प्रणाली की शुरुआत वर्ष 1905 में भारत के तत्कालीन गवर्नर जनरल लॉर्ड कर्जन द्वारा की गई थी।

लार्ड कर्जन का मानना था कि भारत पर शिमला या कोलकाता से शासन किया जाता है किंतु प्रशासन मैदानों से किया जाता है।

लॉर्ड कर्जन जिसे कार्यकाल प्रणाली का जनक भी कहते है के इसी विश्वास के फलस्वरुप ही कार्यकाल प्रणाली की शुरुआत हुई थी।

ब्रिटिश शासनकाल में गठित निम्नलिखित समितियों और आयोगों ने कार्यकाल प्रणाली का समर्थन किया था–

- **लेवोलिन स्मिथ समिति 1919 –** गवर्नमेंट ऑफ इंडिया सेक्रेटेरियट प्रोसीजर कमेटी की रिपोर्ट
- **साइमन आयोग 1930–** इंडियन स्टेचुरी आयोग की रिपोर्ट
- **व्हीलरसमिति 1936–** गवर्नमेंट ऑफ इंडिया सेक्रेटेरियट कमेटी की रिपोर्ट
- **मैक्सवेल समिति 1937–** आर्गेनाइजेशन एंड प्रोसीजर पर रिपोर्ट
- **रोलैंड समिति 1944–45 –** बंगाल एडमिनिस्ट्रेटिव इन्क्वायरी कमेटी की रिपोर्ट

प्रशासनिक सुधार आयोग के अध्यक्ष दल ने केंद्रीय सचिवालय में राज्य सचिवालय में (राज्य सचिवालयों में भी) कार्मिक प्रशासन से संबंधित कर्मचारियाँ के कार्यकाल की प्रणाली का समर्थन किया है।

कार्यकाल प्रणाली के समर्थन में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किए गए हैँ–

- इस पर प्रणाली द्वारा केंद्र और राज्यों के बीच प्रसासनिक तालमेल बनाए रखा जा सकता है और इस प्रकार भारतीय संघीय शासनतंत्र को मजबूती प्रदान की जा सकती है।
- इस प्रणाली के द्वारा केंद्रीय सचिवालय मैँ उन अधिकारियो की नियुक्ति की जा सकती है जिन्हें जिला प्रशासन या क्षेत्र प्रशासन का ही अनुभव प्राप्त होता है।
- इसमें राज्य सरकार के अधिकारियों को राष्ट्रीय स्तर पर बेहतर अनुभव

मिलता है।

- इससे उन सभी अधिकारियो को समान अवसर प्राप्त होता है जो सचिवालय में निर्धारित अवधि तक तैनात रहने के अधिकारी हैं।
- इससे राष्ट्र की प्रशासनिक एकता तथा लोकसेवा की स्वतंत्रता की रक्षा होगी।

यह यथार्थवादी राष्ट्रीय नीतियो के निर्माण को प्रोत्साहित करता है जिनका कार्यक्षेत्र में क्रियान्वयन अपेक्षाकृत कम कठिनाई से होगा। इसका कारण है कि सचिवालय के अधिकारी प्रशासन के वास्तविक तथ्यौँ से अवगत होते है।

यह अधिकारियो के रुढ़िवादी बनने की संभावना को कम करता है, क्योंकि यह सचिवालय मैँ उन्हें लंबी अवधि तक काम करने का अवसर नहीं देता। यह उन्हें एक अलग प्रकार के वातावरण मैँ कार्य करने का अवसर प्रदान करता है, जो कि उनके दृष्टिकोण मैँ ताजगी ला सकता है।

यह अधिकारियों को सचिवालय में नियुक्ति के दौरान विशेष लाभ प्राप्त करने में सक्षम बनाता है और इससे लोक सेवा में उत्साह का संचार होता है।

यह सचिवालय के कार्मिक प्रबंधन में आवश्यक लचीलापन उपलब्ध कराता है क्योंकि यह सरल तरीके से अक्षम और अयोग्य अधिकारियो से छुटकारा पाने में प्रबंधन को सक्षम बनाता है।

फिर भी आलोचकों ने कार्यकाल प्रणाली के विरोध में निम्नलिखित तर्क दियें हैं–

इसके कारण सचिवालय का अति नौकरशाहीकरण और पद– अधिभावी प्रशासन जैसी बुराइयाँ सामने आती हैं। सचिवालय में नियुक्त एक नया अधिकारी के कार्य को पूरा करने के लिए आहार स्थायी पद अवस्थापन पर अधिक निर्भर रहता है।

यह विशेषीकरण को सुनिश्चित नहीं करता है क्योंकि यह सामानय प्रशासन के उच्चतर गुण के मिथक पर अनिवार्य रुप से आधारित है। दूसरी ओर मंत्रालयों एवं विभागौं मैँ कार्य तेजी से विशेषीकृत हो रहा है।

इसका मुख्य आवेग जिला या चित्र अनुभव है जि कि सचिवालय कार्य के कई क्षेत्रों में अनिवार्य और प्रासंगिक नहीं है।

उल्लेखनीय रुप से केंद्र सरकार के सभी मंत्रालयों एवं विभागों में कार्यकाल प्रणाली कभी–भी मौजूद नहीं थी। ब्रिटिश काल के दौरान थी अग्रलिखित 4 विभागों को कार्यकाल प्रणाली के दायरे से बाहर रखा गया था – भारतीय लेखा परीक्षा और लेखा विभाग, सीमा शुल्क और आयकर विभाग, विदेशी और राजनीति विभाग, डाक और टेलीग्राफ विभाग।

आज कार्यकाल प्रणाली की स्थिति इतनी मजबूत नहीं है, जितनी स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले थी। प्रणाली को कमजोर बनाने मेँ निम्नलिखित तत्वों का योगदान है–

इस समय अवर सचिव और उपसचिव के अधिकांश पद पर केंद्रीय सचिवालय सेवा संवर्ग के सदस्य हैं। इस प्रकार वर्ष 1948 में गठित इस सेवा संवर्ग के फलस्वरुप सचिवालयी अधिकारियों को स्थायित्व प्राप्त हुआ। वर्तमान में केंद्रीय सचिवालय सेवा मेँ 5 ग्रेड शामिल हैं–

- वरिष्ठ चयन के ग्रेड (निदेशक)
- चयन ग्रेड (उप–सचिव)
- ग्रेड–1 (अपर सचिव)
- अनुभाग अधिकारी ग्रेड और
- सहायक ग्रेड

कार्मिक मंत्रालय के कार्मिक एवं प्रशिक्षण विभाग को इस सेवा के संदर्भ में संवर्ग नियंत्रित करने का प्राधिकार है।

वर्ष 1961 में विशेष केंद्रीय सेवा श्रेणी – 1 के रूप में गठित भारतीय आर्थिक सेवा और भारतीय सांख्यिकी विशेष सेवा के अधिकारी, जिनकी संख्या केंद्रीय में अधिक है, कार्यकाल प्रणाली के अंतर्गत नहीं आटे हैं अर्थात फील्ड और मुख्यालय (सचिवालय) के बीच पदस्थ रहते हैं।

वर्ष 1938 में गठित वाणिज्य बॉयज पूल (किंतु वर्ष 1946 में समाप्त) तथा 1957 में गठित केंद्रीय प्रशासनिक पूल के माध्यम से कार्यकाल प्रणाली में सुधार किया गया था। केंद्रीय प्रशासनिक पूल मेँ भारतीय प्रशासनिक सेवा, केन्द्रीय सेवा श्रेणी–1, केंद्रीय सचिवालय सेवा – श्रेणी–1 तथा राज्य सेवाओं के लिए श्रेणी–1 के अधिकारी शामिल होते हैं। इसका गठन केंद्रीय सचिवालय में उप–सचिव स्तर

या इससे ऊपर के स्तर के पदों के लिए किया गया था। इसमें सामान्य और विषेश दोनों श्रेणी के पद हैं। इस पूल का प्रबंधन और नियंत्रण कार्मिक मंत्रालय द्वारा किया जाता है। कार्यकाल प्रणाली के अंतर्गत केंद्रीय सचिवालयी सेवा में आए अधिकारी अपने मूल विभागों या राज्य सरकारों में वापस नहीं जाते जिसका मुख्य कारण उच्च वेतन, राजधानी नगर की सुविधाएँ तथा केंद्र से निकटता आदि जैसे सचिवालय तैनाती संबंधी लाभ हैं।

राज्य अपने अच्छे अधिकारियों को केंद्र सरकार में भेजने को सदैव उत्सुक नहीं रहते। राज्य सरकारों की इस अनिच्छा के कारण सचिवालय और फील्ड क्षेत्र के मध्य अधिकारियों के आदान प्रदान मेँ बाधाएं आती हैं।

कार्यकाल प्रणाली में उस समय अस्तित्व में आई थी जब जहाँ एकात्मक प्रणाली का शासन था किंतु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद एकात्मक प्रणाली का स्थान संघीय प्रणाली ने ले लिया।

सचिवालय के अधिकारी कर्मचारी

सचिवालय के अधिकारी कर्मचारियों का पदक्रम इस प्रकार है–

- सचिव
- अपर सचिव
- संयुक्त सचिव
- निदेशक
- उप सचिव
- अवर सचिव

उपर्युक्त में से प्रथम तीन पदक्रम के अधिकारी उच्च श्रेणी के प्रबंधन का कार्य तथा अंतिम तीन पदक्रम के अधिकारी मध्यम श्रेणी के प्रबंधन का कार्य देखते हैं। ये सभी अधिकारी अपने स्तर पर कार्यों निपटान करते हैँ तथा महत्वपूर्ण विषयों को उच्च अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत करते हैं इसके अतरिक्त ये सब अधिकारी भारत सरकार के हितों को ध्यान में रखकर अपने कर्तव्यों का निर्वाह करते हैं। इसलिए सचिव को सचिव, भारत सरकार के रुप में पद नामित किया गया है, न कि सम्बद्ध मंत्री मंत्रालय के सचिव के रुप में।

सचिव

सचिव की भूमिकाएं निम्नलिखित हैं–

- वह मंत्रालय विभाग का प्रशासनिक प्रमुख होता है। इस सन्दर्भ में उसकी जिम्मेदारियां पूर्ण और अविभाजित हैं।
- वह नीतिगत और प्रशासनिक मामलों के सभी पहलुओं पर मंत्री का प्रमुख सलाहकार होता है।
- वह संसदीय लोकल समिति के के समक्ष अपने मंत्रालय ध विभाग का प्रतिनिधित्व करता है।

अपर संयुक्त सचिव

अपर सचिव किसी विभाग अथवा विभाग के किसी स्कंध का प्रभारी होता है। दूसरी ओर संयुक्त सचिव किसी विभाग के स्कंध का अंदर का प्रभारी होता है।

संयुक्त सचिव का दर्जा और वेतन अपर सचिव से कम होता है क्योंकि अपर सचिव, संयुक्त सचिव से वरिष्ठ होता है। कुल मिलाकर इन दोनों अधिकारियों के कार्यों में अपर सचिव यदि किसी विभाग का प्रभारी नहीं है तो कोई अधिक अंतर नहीँ है।

निदेशक उप सचिव

संयुक्त निदेशक का पद वर्ष 1960 में सृजित हुआ था। निदेशक और उप सचिव की जिमेदारियों में कोई अधिक अंतर नहीं है, न ही किसी उप सचिव को निदेशक के अधीन किया जा सकता है। लेकिन निदेशक का दर्जा और वेतन उप सचिव से अधिक होता है। उप सचिव, सचिव की ओर से कार्य करता है और प्रभाग का प्रभारी होता है।

वह स्वयं अधिकांश मामले का निपटाता है, तथा केवल महत्वपूर्ण मामलोँ पर पर विभाग के संयुक्त अपर सचिवों अथवा सचिव से मार्गदर्शन प्राप्त करता है।

अवर सचिव

अवर सचिव शाखा का प्रभारी होता है, इसलिए उसे शाखा अधिकारी भी कहते हैं। वह प्रायः प्राप्त अभ्यावेदनों पर कार्यवाही। वह छोटे मामलोँ को स्वयं निपटाता है तथा केवल महत्वपूर्ण मामलोँ को उप सचिव को प्रस्तुत करता है।

स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले, अवर सचिव से नीचे का सहायक सचिव पद का होता था इस पद को मैक्सवेलस समिति की रिपोर्ट 1937 की अनुशंसाओं पर समाप्त कर दिया गया।

विशेष कार्याधिकारी OSD

विशेष कार्य अधिकारी पद पर विद्यमान अधिकारियो में से किसी अधिकारी की नियुक्ति होती है– वह आवश्यक प्रकृति के उन कार्यो को देख को देखता है जिस पर पूरा ध्यान दिए जाने की जरुरत होती है। मूलतः यह अस्थायी पद है जिसे अत्यावश्यक दृष्टि से सृजित किया गया है। OSD द्वारा निष्पादित ड्यूटी और कार्य विशेष प्रकृति के होते हैं।

OSD का दर्जा निर्धारित नहीं है, किंतु इस पद पर सचिव से लेकर अवर सचिव तक के अधिकारी नियुक्त होते हैं। कभी–कभी अनुभाग अधिकारी को भी OSD नियुक्त किया जाता है।

भारत में OSD का पद एक ब्रिटिश विरासत हैं। इसके निम्नलिखित गुण है–

- यह कार्य के बेहतर समन्वय को संभव बनाता है।
- यह कार्य के समापन और निर्णय के अभिलंब क्रियान्वयन को बढ़ावा देता है।

कार्यालय कर्मचारी

सचिवालय में अधिकारी प्रवर्ग के अतिरिक्त कार्यालय कर्मचारियों का भी वर्ग है। सचिवालय के कार्यालय कर्मचारियों में निम्नलिखित कार्मिक शामिल हैं–

- अनुभाग अधिकारी (अधीक्षक)
- सहायक अनुभाग अधिकारी
- उच्च श्रेणी लिपिक
- अवर श्रेणी लिपिक
- आशुलिपिक–टंकक और टंकक
- कर्मकार

अनुभाग अधिकारी कार्यालय – अनुभाग का प्रमुख होता है तथा अनुभाग के

सभी कार्मिकों और अवर सचिव के मध्य संपर्क बनाए रखता है। अनुभाग अधिकारी का मुख्य कार्य अपने अनुभाग के कार्मिकों के कार्य का पर्यवेक्षण करना है।

अनुभाग अधिकारी सचिवालय कार्मिक के पदक्रम की दृष्टि से पहली पंक्ति का पर्यवेक्षक है।

सचिवालय के कर्मचारी वर्ग के कार्मिक निम्नलिखित दोनों सेवाओं से आते हैं–

- केंद्रीय सचिवालय आशुलिपिक सेवा जिसमें 5 ग्रेड है– वरिष्ठ प्रमुख निजी सचिव का ग्रेड, निजी सचिव ग्रेड, ग्रेड एबी (आमेलित), ग्रेड सी, ग्रेड डी।
- केंद्रीय सचिवालय लिपिकीय सेवा, जिसमें दो ग्रेड हैं– उच्च श्रेणी (लिपिक) ग्रेड, अवर श्रेणी (लिपिक) ग्रेड।

इन दोनो सेवाओं के संवर्ग नियंत्रण का प्रधिकार कार्मिक मंत्रालय के कार्मिक एवँ प्रशिक्षण विभाग के पास है।

वर्ष 1976 के कर्मचारी चयन आयोग अवर श्रेणी के लिपिकों की सीधी भर्ती के लिए प्रतियोगी परीक्षाओं का आयोजन करता रहा है।

उच्च श्रेणी लिपिक पदो को सीधी भर्ती द्वारा नहीं भरा जाता है। इन पदों इन अवर श्रेणी के लिपिकों को प्रोन्नत करके भरा जाता है।

अनुभाग अधिकारी तथा सहायक अनुभाग अधिकारी के पदों में से कुछ पदो को प्रतियोगी परीक्षा के आधार पर सीधी भर्ती द्वारा और कुछ को अधीनस्थ कार्मिको की प्रोन्नति द्वारा भरा जाता है।

डेस्क अधिकारी प्रणाली

डेस्क अधिकारी प्रणाली की शुरुआत से सन 1973 में केंद्र सरकार के मंत्रालयों विभागों की कार्य पद्धति में बदलाव सा आ गया था। यह प्रशासनिक सुधार आयोग के तहत देशमुख अध्ययन दल की सिफारिशों के आधार पर किया गया था। इस प्रणाली की शुरुआत व्हाइटहॉल प्रणाली की तर्ज पर की गई थी।

इस नई प्रणाली के अंतर्गत किसी मंत्रालय के सबसे निचले स्तर के कार्य को

अलग–अलग डेस्कों में व्यवस्थित किया गया है।

प्रत्येक डेस्क में दो अधिकारियों अर्थात एक अपर सचिव और एक अनुभाग अधिकारी या एक अनुभाग अधिकारी और एक सहायक अनुभाग अधिकारी या दो अनुभाग अधिकारियों को पदस्थ किया जाता है।

प्रत्येक अधिकारी को डेस्क अधिकारी कहा जाता है जिसकी सहायतार्थ आशुलिपिक लिपिक उपलब्ध होते हैं। डेस्क अधिकारी मामलों को स्वयं निपटाता है तथा नीति से जुड़े महत्वपूर्ण मामलों के निपटान हेतु सूचना अधिकारियो को प्रस्तुत करता है।

डेस्क अधिकारी प्रणाली के लाभ इस प्रकार हैं–

- इससे मामलों का त्वरित निपटान होता है तथा मामले सीधे उच्च स्तर के अधिकारियो तक पहुंचते हैं।
- इससे लिपकीय स्तर पर मामलों की जांच नहीं करनी पडती है।
- इससे सचिवालय के कार्यों में विलंब होने की संभावना नही रहती।
- इससे व्यय में भी कमी आती है।
- अधिकारी स्तर पर ही मामलों की जांच कर लिए जाने के कारण कार्य की गुणवत्ता बनी रहती है।

कार्यकारी संगठन

भारत सरकार के प्रत्येक मंत्रालय में राजनीतिक प्रमुख और सचिव की अध यक्षता में सचिवालय के संगठन के अतिरिक्त कार्यकारी संगठन भी होते हैं।

ये कार्यकारी संगठन सचिवालय संगठन द्वारा तैयार की गई नीतियों को कार्यांवित करते हैं। कार्यकारी संगठन सचिवालय के अधीन कार्य करते हैं।

इनके कार्यकारी प्रमुखों (विभाग प्रमुखों) को विभिन्न नामों से पदनामित में किया गया है– निदेशक, महानिदेशक, नियंत्रक, मुख्य नियंत्रक, महानिरीक्षक, आयुक्त और महापंजीयक आदि।

कार्य

सरकारी एजेंसियों के दो रुप हैं– संबद्ध कार्यालय और अधीनस्थ कार्यालय।

सरकारी कार्यपद्धति की संहिता में इन कार्यालयों की निम्नलिखित व्याख्या की गयी है–

एक और जहाँ सरकार की नीतियों के कार्यान्वयन के लिए इस कार्य के लिए कार्यकारी दिशानिर्देशों के विकेंद्रीयकरण और फील्ड एजेंसियों की स्थापना जरुरी है, वहीं दूसरी ओर मंत्रालय के अंतर्गत अधीनस्थ कार्यालय हैं। मंत्रालय द्वारा निध ारित नीतियो के कार्यांवयन के लिए आवश्यक कार्यकारी निर्देश देने की जिम्मेदारी मंत्रालय से संबद्ध कार्यालयों की है।

संबद्ध कार्यालय मंत्रालय को किसी विषय से संबंधित तकनीकी पहलुओं की जानकारी उपलब्ध कराते है, जिसके लिए इन कार्यालयों के पास तकनीकी सूचनाओं का भंडार होता है। अधीनस्थ कार्यालय फील्ड प्रतिष्ठान के रुप में अथवा सरकार के निर्णयों के विस्तृत कार्यान्वयन के लिए उत्तरदायी एजेंसी के रुप में कार्य करते हैं।

अधीनस्थ कार्यालय प्रायः संबद्ध कार्यालय के निर्देशन में अथवा कार्यकारी निर्देशों की मात्रा अधिक होने पर सीधे मंत्रालय के निर्देशन में कार्य करते हैं।

टोटेनहम समिति (1945–46) और प्रथम वेतन आयोग (वरदाचारियार 1946–47) ने संबद्ध कार्यालयों के मध्य भेद को असंतोषजनक और बनावटी करार देते हुए इन दो श्रेणी के कार्यालयों के मध्य विवाद को समाप्त करने का सुझाव दिया था।

11

भारतीय कानून एवं न्यायपालिका

एक व्यक्ति एक सामाजिक इंसान है जो समूह में रहता है, जिसे समाज कहा जाता है। उसे अपनी आजीविका के लिए कई तरह की गतिविधियाँ करनी पड़ती हैं। कुछ गतिविधियाँ अच्छी होती हैं या कुछ बुरी।

दूसरे शब्दों में, कुछ समाज के लिए फायदेमंद होती हैं और कुछ समाज के लिए हानिकारक होती हैं। मानव व्यवहार की गतिविधियों को विनियमित करने के लिए नियामक अधिकारियों द्वारा निर्धारित गतिविधियों का एक समूह पेश किया जाता है ताकि कोई भी दूसरे को नुकसान न पहुँचा सके, नियमों के इस समूह को कानून कहा जाता है।

कानून का अर्थ

वास्तविक दुनिया में, कानून नियमों का एक अस्पष्ट समूह है जो व्यक्तियों और समूह के व्यवहार को नियंत्रित करता है। हम इनमें से कई नियमों के बारे में जानते भी नहीं हैं या हम उन्हें केवल सामान्य रूप से समझते हैं। उदाहरण के लिए, आपको यह जानने के लिए लिखित कानून देखने की आवश्यकता नहीं है कि किसी और की संपत्ति चुराना या नष्ट करना अपराध है।

दूसरे शब्दों में, कानून नियमों की एक प्रणाली है जो सामाजिक या सरकारी संस्था के माध्यम से व्यवहार को विनियमित करने के लिए बनाई और लागू की जाती है। वह मुहर जो विनियमित करती है और सुनिश्चित करती है कि व्यक्ति या समुदाय राज्य की इच्छा का समर्थन करते हैं।

कानून का इतिहास

कानून का इतिहास सभ्यता शब्द से निकटता से जुड़ा हुआ है । प्राचीन मिस्र के कानून (3000 ईसा पूर्व में) में एक नागरिक संहिता शामिल थी जिसे संभवतः 12 पुस्तकों में विभाजित किया गया था, जो मात की अवधारणा पर आधारित थी (सत्य, संतुलन, सद्भाव कानून, नैतिकता और न्याय की अवधारणा को संदर्भित करता है)। यह देवी ही थी जो इन अवधारणाओं को दर्शाती थी और सितारों, मौसमों और नश्वर लोगों के कार्यों को नियंत्रित करती थी।

22वीं शताब्दी तक, प्राचीन सुमेरियन शासक उर–मैमी ने कैसुइस्टिक कथनों सहित पहला कानून कोड तैयार किया था। लगभग 1760 ईसा पूर्व, राजा हम्मुराबी ने बेबीलोनियन कानून को संहिताबद्ध करके और उसे स्टेले के रूप में पत्थर पर वर्णित करके नया कानून बनाया। इसे 19वीं शताब्दी में ब्रिटिश लोगों ने खोजा और अंग्रेजी, इतालवी, जर्मन और फ्रेंच सहित विभिन्न भाषाओं में इसका अनुवाद किया।

कानून का प्रतीक देवी मार्ट है, जो एक महिला न्यायधीश हैं, जो तलवार पहनती हैं, जो न्यायाधिकरण की बलपूर्वक शक्ति का प्रतीक है, तराजू एक वस्तुनिष्ठ मानक है जिसके द्वारा प्रतिस्पर्धी दावों को तौला जाता है, जो दर्शाता है कि न्याय निष्पक्ष होना चाहिए, धन, संपत्ति, शक्ति और पहचान की परवाह किए बिना। यह भारतीय कानून में एक बुनियादी सिद्धांत है

कानून के प्रकार

हमारी विधायी प्रणाली में चार प्रकार के कानून हैं।

1. आपराधिक कानून

यह वह प्रेम है जिसे पुलिस लागू करती है। हत्या, मारपीट, डकैती और बलात्कार इसके उदाहरण हैं। एक ऐसा अपराध जिसे सभी के खिलाफ़ माना जाता है, भले ही वह आपराधिक कानून के अंतर्गत न आता हो।

उदाहरण के लिए, अगर कोई कार चोरी हो जाती है तो चोरी व्यक्ति के खिलाफ़ होती है, लेकिन इससे सभी कार मालिकों को खतरा होता है क्योंकि हो सकता है कि उनकी कार चोरी हुई हो। चूँकि यह माना जाता है कि अपराध से सभी को खतरा है, इसलिए इस कानून को सार्वजनिक सेवाओं द्वारा निपटाया जाता है न कि निजी जांचकर्ताओं द्वारा।

2. सिविल कानून

शिक्षा या ट्रेड यूनियन सदस्यता और तलाक की समस्याओं के अधिकार जैसे विभिन्न क्षेत्रों में दंपत्ति के बीच फ़र्नीचर का बंटवारा होता है और बच्चों की कस्टडी किसे मिलती है। सिविल कानून का वर्णन करने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि यह उन कार्यों को देखता है जो अपराध नहीं हैं। लेकिन व्यक्ति स्वयं न्यायालय जाकर या वकील के साथ अपनी समस्याओं को हल कर सकते हैं।

यह कानून का एक ऐसा खंड है जो व्यक्तियों और संगठनों के बीच विवादों से निपटता है। उदाहरण के लिए, कार दुर्घटना के पीड़ित दुर्घटना में हुई हानि या चोट के लिए ड्राइवर से दावा करते हैं या एक कंपनी व्यापार विवाद को लेकर दूसरी कंपनी पर मुकदमा करती है।

3. सामान्य कानून

इसे न्यायिक मिसाल या न्यायाधीश द्वारा बनाया गया कानून या केस लॉ के नाम से भी जाना जाता है। यह न्यायालयों और इसी तरह के न्यायाधिकरणों के न्यायिक निर्णय से प्राप्त कानून का एक निकाय है। जैसा कि नाम से पता चलता है, यह सभी के लिए समान है। आज दुनिया की एक तिहाई आबादी सामान्य कानून के अधिकार क्षेत्र या प्रणालियों में रहती है।

इसे कानूनी नियमों के एक समूह के रूप में परिभाषित किया जाता है जो विधायिका या आधिकारिक प्रतिमाओं द्वारा बनाए गए नियमों और कानूनों के विपरीत मामलों पर विचार करते समय न्यायाधीशों द्वारा बनाए गए हैं। सामान्य कानून का एक उदाहरण एक नियम है जिसके अनुसार न्यायाधीश ने लोगों को अनुबंधों को पढ़ने का कर्तव्य दिया है।

कॉमन लॉ मैरिज का उदाहरण तब होता है जब दो लोग 10 या उससे ज़्यादा सालों तक एक साथ रहते हैं। इस तरह उन्हें अपनी संपत्ति साझा करने का कानूनी अधिकार मिल जाता है।

4. वैधानिक कानून

इसे आमतौर पर विधायी निकाय द्वारा अधिनियमित रिटर्न लॉस को परिभाषित करने के लिए उपयोग किया जाता है। यह विनियामक या प्रशासनिक कानूनों से भिन्न होता है, सामान्य कानून या पूर्व न्यायालय के निर्णयों द्वारा बनाए गए कानून से। विधानमंडल में एक विधेयक प्रस्तावित किया जाता है और उस पर मतदान

किया जाता है। उदाहरण के लिए, आपको गति सीमा का उल्लंघन करने के लिए एक उद्धरण दिया जाता है, आपने एक वाहन और यातायात कानून तोड़ा है।

भारतीय कानून

यह आधुनिक भारत में कानून की व्यवस्था को संदर्भित करता है। भारत औपनिवेशिक युग से विरासत में प्राप्त कानूनी ढांचे और ब्रिटिश द्वारा पहली बार पेश किए गए विभिन्न विधानों के भीतर ऊपर वर्णित सभी चार कानूनों सहित एक संकर कानूनी प्रणाली बनाए रखता है। भारत का संविधान एक सदी के लिए सबसे लंबा लिखित संविधान है। इसमें 450 अनुच्छेद, 12 अनुसूचियाँ 101 संशोधन और 117,369 शब्द हैं। यह भारतीय कानून प्रणाली को बहुत व्यापक बनाता है।

भारतीय कानून काफी जटिल है, क्योंकि धर्म के आधार पर इसे विशेष कानून बनाए गए हैं। अधिकांश राज्यों में विवाह और तलाक का विरोध करना अनिवार्य नहीं है। हिंदू, मुस्लिम, ईसाई और अन्य धर्मों के अनुयायियों के लिए अलग–अलग कानून हैं। यह नियम गोवा राज्य में है, जहां समान नागरिक संहिता लागू है, जिसके तहत विवाह, तलाक और गोद लेने के संबंध में एक ही कानून है।

पिछले दशक में भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने तीन तलाक की इस्लामी प्रथा पर प्रतिबंध लगा दिया था। भारत के सर्वोच्च न्यायालय के इस ऐतिहासिक फैसले का पूरे भारत में महिला कार्यकर्ताओं ने स्वागत किया। जनवरी 2017 तक, लगभग 1248 कानून थे। हालाँकि, भारत में किसी निश्चित तिथि पर केंद्रीय कानूनों की सटीक संख्या जानने का सबसे अच्छा तरीका आधिकारिक स्रोतों से है।

भारत में आपराधिक कानून

चूंकि आपराधिक कृत्यों को सामान्य रूप से समाज के विरुद्ध अपराध माना जाता है, इसलिए राज्य अदालत में अभियोजन पक्ष के रूप में कार्य करता है।

भारत का संविधान एक संघीय व्यवस्था प्रदान करता है जिसमें शक्तियों को केंद्र, राज्य और स्थानीय सरकारों के बीच विभाजित किया जाता है। संविधान के अनुच्छेद 246 के साथ अनुसूची टप्प में शक्तियों का सीमांकन प्रदान किया गया है। शक्तियों को तीन सूचियों में विभाजित किया गया हैः–

- संघ सूची : संघ की संसद को इस सूची में सूचीबद्ध विषयों के संबंध में कानून बनाने की विशेष शक्ति प्राप्त है।

- राज्य सूची : राज्य विधानमंडलों को इस सूची में सूचीबद्ध विषयों के संबंध में कानून बनाने की विशेष शक्ति प्राप्त है।
- समवर्ती सूची : संसद और राज्य विधानमंडलों दोनों को इस सूची में सूचीबद्ध विषयों के संबंध में कानून बनाने की शक्ति है।

केन्द्रीय एवं राज्य कानूनों के बीच विरोधाभास की स्थिति में केन्द्रीय कानून ही मान्य होगा।

आपराधिक कानून और आपराधिक प्रक्रिया समवर्ती सूची के अंतर्गत आते हैं जबकि पुलिस और जेलों से संबंधित मामले राज्य सूची के अंतर्गत आते हैं। भारत में आपराधिक कानून को नियंत्रित करने वाले कानून भारतीय दंड संहिता, 1860 (आईपीसी) और आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1974 (सीआरपीसी) हैं। आईपीसी अपराध होने की स्थिति में पालन किए जाने वाले मूल कानून का प्रावधान करता है। सीआरपीसी पुलिस और अदालतों द्वारा जांच और मुकदमे के दौरान अपनाई जाने वाली प्रक्रियाओं का प्रावधान करता है।

आपराधिक मुकदमों के लिए जिला स्तर पर सत्र न्यायालय नामक विशिष्ट न्यायालय मौजूद हैं। भारत ने कानूनी प्रक्रिया की प्रतिकूल प्रणाली को अपनाया है जिसमें न्यायाधीश एक तटस्थ पक्ष के रूप में कार्य करता है और अभियोक्ता द्वारा अभियोगी और बचाव पक्ष के वकील द्वारा मुकदमा चलाया जाता है जो अपने अभियोगी का बचाव करते हैं। भारत और अन्य सामान्य कानून देशों के बीच एक बड़ा अंतर यह है कि यह जूरी प्रणाली का पालन नहीं करता है।

1. भारतीय दंड संहिता (1860)

भारतीय दंड संहिता (आईपीसी) वह मुख्य दस्तावेज़ है जो सभी आपराधिक कृत्यों और उनके लिए निर्धारित दंड को नियंत्रित करता है। आईपीसी को लागू करने का उद्देश्य भारत में अपराध के लिए एक सामान्य और संपूर्ण दंड संहिता प्रदान करना था। हालाँकि, आईपीसी के अलावा कई अन्य दंड विधान हैं जो विभिन्न अन्य अपराधों को नियंत्रित करते हैं। पशु कानून में, एक उल्लेखनीय ऐसा विधान पशुओं के विरुद्ध क्रूरता निवारण अधिनियम है। आईपीसी के तहत उत्तरदायी ठहराए जाने के लिए, अभियुक्त के पास मेन्स रीआ (दोषी मन) और एक्टस रीआस (दोषी कार्य) दोनों होने चाहिए।

आईपीसी का विस्तार पूरे भारत में है। आईपीसी के तहत दंड भारत के भीतर

किए गए अपराधों के साथ–साथ भारत से बाहर किए गए अपराधों के लिए भी लागू हो सकता है, लेकिन कानून के अनुसार भारत के भीतर ही उन अपराधों की सुनवाई की जा सकती है। आईपीसी के प्रावधान भारत के किसी भी नागरिक द्वारा भारत के बाहर और बाहर किसी भी स्थान पर और भारत में पंजीकृत किसी भी जहाज या विमान पर किसी भी व्यक्ति द्वारा किए गए किसी भी अपराध पर भी लागू होते हैं, चाहे वह कहीं भी हो।

2. दंड प्रक्रिया संहिता (1974)

दंड प्रक्रिया संहिता (सीआरपीसी) एक प्रक्रियात्मक कानून है जो बताता है कि जांच और परीक्षण के दौरान अदालतों द्वारा जांच और प्रक्रिया का पालन करने के लिए पुलिस तंत्र को कैसे काम करना है। सीआरपीसी आपराधिक अपराधों को कई श्रेणियों में वर्गीकृत करता है जैसे कि जमानती, गैर–जमानती, संज्ञेय और गैर–संज्ञेय अपराध। विभिन्न अपराधों का प्रक्रियात्मक उपचार अलग–अलग है। शिकायत दर्ज करने के समय विभिन्न कदम जैसे कि प्रथम सूचना रिपोर्ट (एफआईआर) दर्ज करना, साक्ष्य एकत्र करना और जांच शुरू करना सभी सीआरपीसी द्वारा शासित होते हैं। सीआरपीसी आगे आपराधिक न्यायालयों की श्रेणियां निर्धारित करता है।

3. भारतीय आपराधिक कानून के तहत पशु संरक्षण

भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत दो प्रकार के अपराध हैंः

- संज्ञेय अपराध : यदि ऐसा कोई अपराध किया गया है, तो पुलिस बिना वारंट के किसी व्यक्ति को गिरफ़्तार कर सकती है। पुलिस को संज्ञेय अपराध की जांच खुद ही शुरू करने का अधिकार है और ऐसा करने के लिए उसे किसी अदालती आदेश की आवश्यकता नहीं होती। संज्ञेय अपराधों के उदाहरणों में हत्या और बलात्कार शामिल हैं।

- असंज्ञेय अपराध : यदि ऐसा कोई अपराध किया गया है, तो पुलिस के पास बिना वारंट के गिरफ़्तारी करने का अधिकार नहीं है। पुलिस को न्यायालय की अनुमति के बिना असंज्ञेय अपराध की जाँच शुरू करने का अधिकार नहीं है। असंज्ञेय अपराधों के उदाहरणों में धोखाधड़ी और जालसाजी शामिल हैं।

किसी पशु को मारना या घायल करना भारतीय दंड संहिता के तहत एक

संज्ञेय अपराध है, जिसे पशु क्रूरता निवारण अधिनियम (1960) की धारा 3 के साथ पढ़ा जाए, जिसके अनुसारः

कोई भी व्यक्ति किसी पशु को नहीं मारेगा, लात नहीं मारेगा, घायल नहीं करेगा, मारेगा नहीं, यातना नहीं देगा, तनाव या परेशानी नहीं देगा और न ही मालिक होने के नाते किसी पशु के साथ ऐसा व्यवहार होने देगा।

भारतीय दंड संहिता की धारा 428 में किसी पशु को मारने या घायल करने की सजा इस प्रकार बताई गई हैः

जो कोई दस रुपए या उससे अधिक मूल्य के किसी पशु या पशुओं को मारने, जहर देने, विकलांग करने या बेकार करने की शरारत करेगा, उसे किसी एक अवधि के लिए कारावास से, जिसे दो वर्ष तक बढ़ाया जा सकता है, या जुर्माना, या दोनों से दंडित किया जाएगा।

भारतीय दंड संहिता की धारा 429 में अन्य प्रकार के पशुओं के लिए दंड का प्रावधान इस प्रकार हैः

जो कोई किसी हाथी, ऊँट, घोड़े, खच्चर, भैंस, बैल, गाय या बैल को, चाहे उसका मूल्य कुछ भी हो, या पचास रुपए या उससे अधिक मूल्य के किसी अन्य पशु को मारने, जहर देने, अपंग करने या बेकार करने द्वारा कुकृत्य करेगा, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि पांच वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, या दोनों से, दंडित किया जाएगा।

आईपीसी की धारा 378 के अनुसार पशु चोरी करना चोरी के अपराध के बराबर है। इसके अलावा, आईपीसी की धारा 508 के अनुसार आपराधिक धमकी देना अपराध है, जो तब लगाया जाता है जब पशुपालकों को अवैध रूप से या जबरन पालतू जानवर रखने या आवारा पशुओं को खाना खिलाने से रोका जाता है।

भारत में न्यायपालिका

न्यायपालिका भारत सरकार की तीसरी शाखा है, जो कानून और न्याय प्रदान करने से संबंधित है। भारत में एक एकीकृत प्रणाली है जो अन्य दो से स्वतंत्र है।

भारतीय प्रशासन तीन शाखाओं में विभाजित है– विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका। जबकि पहले दो अन्योन्याश्रित हैं, भारतीय न्यायिक प्रणाली एक स्वतंत्र स्तंभ है। एक अलग स्तंभ का मतलब है कि भारत में न्यायपालिका

सरकार के अन्य दो अंगों के हस्तक्षेप के बिना काम करती है। इस लेख में भारत में न्यायपालिका और उसके कामकाज के बारे में जाना जाएगा। इसके अतिरिक्त, आप भारत में विभिन्न प्रकार के न्यायाधीशों और भारत के विभिन्न प्रकार के न्यायालयों के बारे में जानेंगे। कानून के शासन की रक्षा और कानून की सर्वोच्चता सुनिश्चित करने के लिए जिम्मेदार अंग के बारे में जानना आवश्यक है।

भारतीय न्याय प्रणालीः परिचय

न्यायपालिका भारत सरकार का तीसरा अंग है। यह वह शाखा है जो कानून की व्याख्या करती है, विवादों का निपटारा करती है और भारत के नागरिकों को न्याय प्रदान करती है। भारत में न्यायपालिका को लोकतंत्र का प्रहरी माना जाता है। इसके अतिरिक्त, भारतीय न्यायिक प्रणाली भारत के संविधान की संरक्षक है।

भारत में स्वतंत्र न्यायपालिका

भारतीय न्यायिक प्रणाली को एक स्वतंत्र और निष्पक्ष संरचना के रूप में रहना चाहिए। स्वतंत्रता का मतलब है कि सरकार की अन्य दो शाखाएँ न्यायिक प्रणाली के कामकाज में हस्तक्षेप नहीं करती हैं। विधायिका और कार्यपालिका शाखाएँ भारत में न्यायपालिका के कामकाज में खुद को शामिल नहीं कर सकती हैं।

भारत में न्यायपालिका द्वारा लिए गए निर्णयों का अन्य दो अंग सम्मान करते हैं। इसका अर्थ यह भी है कि न्यायाधीश किसी के साथ पक्षपात किए बिना अपना कर्तव्य निभा सकते हैं।

भारत में न्यायपालिका भले ही स्वतंत्र है, लेकिन यह मनमानी संरचना नहीं है। यह भारत के लोकतांत्रिक राजनीतिक ढांचे का एक हिस्सा है। इसलिए यह एक जवाबदेह निकाय है। भारत में न्यायपालिका भारत के संविधान और भारत के लोगों के प्रति जवाबदेह है।

भारतीय न्यायिक प्रणाली की संरचना

भारत में न्यायपालिका एक एकीकृत न्यायिक प्रणाली है। यह पिरामिड जैसी संरचना है जिसमें भारत का सर्वोच्च न्यायालय सबसे ऊपर है। उसके बाद उच्च न्यायालय और फिर जिला और अंत में अधीनस्थ न्यायालय हैं। निचली अदालतें अपने से ऊपर की अदालतों के सीधे पर्यवेक्षण के तहत काम करती हैं।

न्यायपालिका की संरचना इस प्रकार है:

भारत का सर्वोच्च न्यायालय

यह भारतीय न्यायिक प्रणाली में सर्वोच्च न्यायालय है, जिसे भारतीय संविधान के भाग V के रूप में स्थापित किया गया है। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा लिए गए निर्णय सभी अधीनस्थ न्यायालयों के लिए बाध्यकारी हैं। इसके अतिरिक्त, यह उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को स्थानांतरित कर सकता है। सर्वोच्च न्यायालय अन्य न्यायालयों से मामलों को अपने पास स्थानांतरित कर सकता है। अंत में, यह एक मामले को एक उच्च न्यायालय से दूसरे में स्थानांतरित कर सकता है।

भारत का उच्च न्यायालय

यह भारतीय न्यायिक प्रणाली में दूसरा सबसे महत्वपूर्ण न्यायालय है। इसकी स्थापना संविधान के अनुच्छेद 141 के अनुसार की गई है। उच्च न्यायालय निचली अदालतों से अपील सुन सकता है और मौलिक अधिकारों के लिए रिट जारी कर सकता है। इसके अतिरिक्त, उच्च न्यायालय राज्य के अधिकार क्षेत्र के भीतर के मामलों से निपट सकता है। उच्च न्यायालयों के पास अपने से नीचे के न्यायालयों पर अधीक्षण और नियंत्रण रखने की शक्ति है।

जिला न्यायालय

भारतीय न्यायिक प्रणाली में जिला न्यायालय निम्नलिखित सबसे महत्वपूर्ण न्यायालय हैं। ये न्यायालय जिले में उत्पन्न होने वाले मामलों से निपटते हैं। जिला न्यायालय निचली अदालतों द्वारा दिए गए निर्णयों पर अपील पर विचार करते हैं। इसके अतिरिक्त, जिला न्यायालय गंभीर आपराधिक अपराधों से संबंधित मामलों पर भी निर्णय लेते हैं।

अधीनस्थ न्यायालय

ये भारतीय न्यायिक प्रणाली की संरचना में अंतिम अदालतें हैं। वे सिविल और आपराधिक मामलों की सुनवाई करते हैं।

ऊपर बताए गए विभिन्न प्रकार के न्यायालयों के अलावा, भारत में कानूनी प्रणाली की दो और शाखाएँ हैं। भारत में न्यायिक प्रणाली की दो शाखाएँ इस प्रकार हैं:

- आपराधिक कानून उन मामलों से संबंधित है जब कोई नागरिक या संस्था अपराध करती है। स्थानीय पुलिस द्वारा अपराध की रिपोर्ट दर्ज करने पर एक बिंदु दर्ज किया जाता है। अदालत अंततः मामले पर आपराधिक मामलों पर फैसला सुनाती है।
- सिविल कानूनः यह उन मामलों से निपटता है जब किसी नागरिक के मौलिक अधिकारों के उल्लंघन पर विवाद होता है।

न्यायपालिका की भूमिका

भारत में न्यायपालिका के कई कार्य हैं जैसेः

- न्याय प्रशासनः भारत में न्यायपालिका का प्राथमिक कार्य कानून को उन विशिष्ट मामलों में लागू करना है जहाँ उसे विवादों को निपटाने की आवश्यकता होती है। जब कोई विवाद न्यायालय के समक्ष लाया जाता है, तो उसका कार्य विवाद करने वाले लोगों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों के माध्यम से तथ्यों का निर्धारण करना होता है। इसके बाद न्यायालय तय करता है कि मामले पर कौन सा कानून लागू होता है और उसे लागू करता है। जब न्यायालय किसी व्यक्ति को मुकदमे में कानून का उल्लंघन करने का दोषी पाता है, तो न्यायालय दोषी व्यक्ति की सजा पर फैसला सुनाएगा।
- न्यायाधीश—मामला कानून का निर्माणः मामलों में, न्यायाधीश विषय पर लागू होने वाली उचित दिशा का चयन नहीं कर सकते हैं। वे अपने विवेक और सामान्य ज्ञान के आधार पर निर्णय लेते हैं। जब ये निर्णय होते हैं, तो वे श्न्यायाधीश द्वारा बनाए गए कानूनश या श्मामला कानूनश का एक समूह बनाते हैं। न्यायाधीशों के पिछले निर्णयों को आम तौर पर समान मामलों में न्यायाधीशों के लिए बाद में बाध्यकारी माना जाता है।
- संविधान का संरक्षकः सर्वोच्च न्यायालय संविधान का संरक्षक है। न्यायालय केंद्र सरकार और राज्य सरकारों के बीच किसी भी विवाद का फैसला करता है। यदि कोई कानून या आदेश किसी संवैधानिक प्रावधान का उल्लंघन करता है, तो सर्वोच्च न्यायालय उसे अमान्य घोषित कर सकता है।
- मौलिक अधिकारों का रक्षकः न्यायपालिका का एक मुख्य कार्य यह

सुनिश्चित करना है कि राज्य या किसी अन्य द्वारा लोगों के अधिकारों का हनन न किया जाए। सर्वोच्च न्यायालय रिट जारी करके मौलिक अधिकारों को लागू करता है।

न्यायपालिका में न्यायाधीश

संविधान के अनुसार, सर्वोच्च न्यायालय में 1 मुख्य न्यायाधीश और 34 अन्य न्यायाधीश हो सकते हैं। इन न्यायाधीशों के अलावा, उच्च न्यायालय के न्यायाधीश, अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश और मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट भी होते हैं।

भारत के राष्ट्रपति मुख्य न्यायाधीश और 34 अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति करते हैं। सर्वोच्च न्यायालय में न्यायाधीशों की अधिकतम संख्या 34 हो सकती है।

प्रत्येक उच्च न्यायालय में न्यायाधीशों की संख्या अलग–अलग होती है। राष्ट्रपति राज्य के उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति करता है।

12

भारत में चुनावी राजनीति

समकालीन भारत की राजनीति में जाति की भूमिका

समकालीन भारत की राजनीति में जाति की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। मौरिस जोन्स का कथन सत्य है कि "जातियों की राजनीति अधिक महत्वपूर्ण है तथा राजनीति में जातियां पहले की अपेक्षा कहीं अधिक महत्वपूर्ण है।" स्वतंत्र भारत में चुनाव आदि सभी राजनीतिक गतिविधियों में जाति का प्रभाव बढ़ रहा है। भारत की राजनीति में जाति की भूमिका की चर्चा निम्नलिखित भागों में की जा सकती है–

1 **चुनाव में उम्मीदवारों का चयन–** 1952 के आम चुनाव से लेकर वर्तमान लोकसभा के चुनाव तथा राज्यों की विधानसभा चुनावों में सभी राजनीतिक दल उसी जाति के उम्मीदवार को चुनाव के लिए टिकट देते है। जिस जाति का उस चुनाव क्षेत्र में बहुमत है।

2 **चुनाव प्रचार –** भारत में स्थानीय चुनावों से लेकर लोकसभा के चुनाव तक चुनाव–प्रचार में जाति का सहारा लिया जाता है–प्रथम, उनसे चन्दा लेकर और दूसरे, चुनाव में समर्थन लेकर।

3 **मतदान व्यवहार –** भारत में मतदाता अपने जाति के उम्मीदवार को मत तो देते ही है।, अन्य जाति के लोगों को भी ऐसा करने को बाध्य करते है।

4. **मन्त्रि–परिषद का गठन–** कुछ राज्यों में विशेष जाति के व्यक्ति को

ही मुख्यमंत्री बनाया जाता है। मंत्री – परिषद में जाति के आधार पर प्रतिनिधित्व दिया जाता है।

5. **निर्णय प्रक्रिया में जाति की भूमिका–** भारत में जाति राजनीति और प्रशासनिक निर्णय प्रक्रिया को भी प्रभावित करती है। उदाहरण के लिए, अनुसूचित जातियों और जन–जातियों के लिए आरक्षण की व्यवस्था पहले दस वर्ष के लिए की गई थी। परन्तु लगातार 10–10 वर्ष बाद बढ़ाकर अब यह 2010 ईस्वी तक के लिए कर दी गई तथा फिर आगे के लिए भी इसे बढ़ा दिया गया है।

6. **पंचायती राज और जातिवाद –** समकालीन भारत में पंचायती राज–व्यवस्था में जाति की भूमिका का नकारात्मक स्वरूप बहुत ही घिनौना है। पंचायती राज–व्यवस्था के तीन संगठनों–ग्राम पंचायत सीमित तथा जिला–परिषद में चुनाव की व्यवस्था है। इनमें चुनाव का आधार जाति –व्यवस्था है। इन सभी चुनावों में पंचायत के सदस्यों पर अनुचित प्रभाव डालकर अपनी जाति के उम्मीदवार का समर्थन करने के लिए बाध्य किया जाता है।

7. **जातिवाद नेतृत्व में वृद्धि –** वर्तमान समय में भारतीय लोकतंत्र में जातिवाद के कारण जाति आधारित नेतृत्व में वृद्धि हो रही है। शिक्षा प्रसार के कारण अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और पिछड़े, वर्गों में नया नेतृत्व पैदा हो रहा है। इससे नये दल भी गठित हो रहे है।, चुनाव प्रक्रिया भी दूषित हो रही है और जातिवाद तनाव भी बढ़ रहा है।

जनमत निर्माण

चुनाव और उनके परिणामों को सामान्यत नए लोकतांत्रिक अनुभव के रूप में देखा जाता है, परन्तु गत वर्षों में इस व्यवस्था की अनेक कमियां भी उजागर हुई है। ये कमियां है।: निष्पक्ष व स्वतंत्र चुनाव करवाने में कठिनाईयां, उनकी विश्वसनीयता के प्रति आंशकाएं एवं चुनावी व्यवस्था तथा कार्यविधि से समाहित विसंगतिया। इस प्रकार यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि लोकतांत्रिक व्यवस्था को मजबूत करने के लिए चुनाव व्यवस्था में सुधार लाए जाए। वर्तमान में चुनाव व्यवस्था में सुधार का प्रश्न सभी राजनेताओं, मीडिया, नागरिक, राजनीतिक पर्यवेक्षकों और सबसे अधिक, चुनाव करवाने वालों के लिए चिंतन का विषय बना हुआ है। इस संदर्भ में सबसे

पहले हम यह जानेंगे कि इस व्यवस्था के समक्ष कौन–सी कमियां और समस्या है।

व्यवस्था की त्रुटियां

1. **दलों एवं प्रत्याशियों का बाहुल्य–**राजनीतिक दलों को नियमित करने हेतु कोई कानून नहीं है। बहुल व्यवस्था में कोई भी दल जिसका सीमित भौगोलिक क्षेत्र में प्रभाव है कुछ सीट जीतने की संभावना रखता है। इसका परिणाम यह है कि देश राजनीतिक दलों की लगातार बढ़ती हुई संख्या की समस्या से जूझ रहा है। यह अनुमान है कि देश में 700 से ज्यादा राजनीतिक दल है। दलों की बहुतायत न सिर्फ मतदाताओं में भ्रम पैदा करती है बल्कि चुनाव में उम्मीदवारों की अत्यधिक संख्या प्रशासनिक समस्याएं भी उत्पन्न करती है। स्वतंत्र उम्मीदवारों की भी बड़ी संख्या ऐसी समस्या में और अधिक बाधा उत्पन्न करती है, क्योंकि उनके नामंकन एवं चुनाव में उतरने पर कोई नहीं है। ऐसे सिद्धान्त विहीन, व्यक्ति–आधारित दल एवं स्वतंत्र उम्मीदवार चुनाव के बाद के परिदृश्य में अवसरवादी गठबंधन एवं अस्थिर सरकार की समस्या उत्पन्न करते है।

2 **अप्रतिनिध्यात्मक –** भारतीय निर्वाचन व्यवस्था में एक मुख्य कमी है कि बहुल मतदान या 'फास्ट पास्ट दी पोस्ट' व्यवस्था में प्राप्त मतों की संख्या तथा जीती गई सीटों की संख्या में कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है। अधिकतर चुनावी परिणाम यह दर्शाते है। कि चुनाव में वोट का प्रतिशत एवं जीती गई सीटों की संख्या से असंतुलन होता है। यह भी देखा गया है कि किसी भी लोक सभा के चुनाव में सत्ता प्राप्त करने वाले दल या गठबंधन को 50 प्रतिशत मत भी प्राप्त नहीं होते। एक पर्यवेक्षक ने यह भी दर्शाया है कि कुल मतदान 60 प्रतिशत से अधिक नहीं होता। सामान्यतः कोई भी दल जो 30 से 35 प्रतिशत तक मत प्राप्त कर लेता है उसे सरकार बनाने का अवसर मिल जाता है। दूसरे शब्दों में कुल मतदाताओं में 18 से 21 प्रतिशत मतदाताओं के समर्थन के आधार पर ही सरकार का गठन हो जाता है। प्रारम्भिक वर्षों के दौरान विरोधी दल लोकमत के एक बड़े भाग का प्रतिनिधित्व करते थे, परन्तु विधायिकाओं के संगठन में एक दल की प्रधानता थी।

छोटे–छोटे अनेक दल अल्प प्रतिनिधित्व की स्थिति में रहते है। इसी कारण विभिन्न सामाजिक समूह अपनी संख्या के अनुपात में समुचित प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं कर पाते। इस तथ्य का दूसरा पहलू यह है कि किसी न किसी प्रत्याशी को चुनाव में विजयी होना ही है। इसलिए राजनैतिक दल प्रत्याशियों को निर्धारित करते समय धर्म, जाति आदि प्रभावों से अछूते नहीं रहते। फलस्वरूप, प्रत्याशियों के चयन मे ंप्रतिभा पिछड़ कर रह जाती है।

3. **बढ़ते खर्च एवं धन का प्रभाव –** भारत में चुनाव लड़ने वाले तथा इसे सम्पन्न कराने वाले, दोनों के लिए यह एक खर्चीली व्यवस्था है। बड़े–बड़े संख्या, राजनीतिक दल एवं उम्मीदवारों को व्यवहार एवं अन्य ऐसे तत्व चुनाव को शांतिपूर्ण एवं व्यवस्थित ढंग से कराने में राज्य के ऊपर खर्चे का बड़ा बोझ डाल देते है। अस्थिर सरकारों के कारण लोक सभा के चुनाव 5 वर्षों में एक बार ही सीमित नहीं रहे है। इसी प्रकार राज्यों के विधान सभा चुनावों में भी भारी खर्च के किए जाते है।

4. **राजनीतिक का अपराधीकरण –** चुनाव में बाहुबल की शक्ति के प्रयोग का सबसे महत्वपूर्ण परिणाम यह हुआ है, कि स्थानीय बाहुबली एवं अपरापधी जिनकी सेवाएं पहले उगाही के लिए या जुटाने के लिए ली जाती थीं, अब वो चुनाव में सीधे हिस्सा लेने लगे है। एवं प्रक्रिया में चुने भी जाते है। पूर्व निर्वाचन आयुक्त जी.वी.जी. कृष्णामूर्ति ने 1996 के लोक सभा चुनाव का एक नमूना उदाहरण के तौर पर 1997 में जारी किया जा राजनीति के अपराधीकरण को दर्शाता है। उन्होंने यह पाया कि लोक सभा के 13,952 उम्मीदवारों में से लगभग 1,500 उम्मीदवारों की आपराधिक पृष्ठभूमि रही है। उनकी आपराधिक गतिविधियों में हत्या, डकैती, बालात्कार, गबन एवं जबरन वसूली के मामले सम्मिलित थे। उन्होंने यह भी दर्शाया कि ऐसे कम से कम 40 उम्मीदवारों ने चुनाव जीत भी लिया।

यहां यह जानना आवश्यक है कि जन प्रतिनिधित्व कानून 1951 की धारा (क) के अनुसार जिस किसी भी व्यक्ति को कुछ विशेष मामलों में दोषी करार दिया गया हो तो वह उम्मीदवार नहीं बन सकता, परन्तु जो दोषी करार नहीं दिए गए है।, उन पर ऐसा कोई प्रतिबंध नहीं है। इसलिए ऐसे व्यक्ति जिनके विरूद्ध मामले दर्ज तो है।, परन्तु उन्है। दोषी करार नहीं दिया गया है, वे चुनाव लड़ सकते है। ऐसे व्यक्तियों का राजनीति में महत्वपूर्ण हो जाना प्रशासन एव सामान्य व्यक्ति के

जीवन तथा सम्पत्ति को खतरा उत्पन्न करता है।

जाति व्यवस्था को भड़काना एवं सांप्रदायिक पूर्वाग्रह

हमारी चुनावी व्यवस्था में एक अन्य प्रमुख बुराई जाति एवं संप्रदाय जैसे कारकों का बढ़ता प्रयोग है। चुनाव के समय जाति एवं संप्रदाय के पूर्वाग्रह का प्रयोग कोई नई बात नहीं है, तथा यह सिर्फ चुनाव तक सीमित भी नहीं है। परन्तु हाल के वर्षों मे इसमें बढोत्तरी हुई है। सभी राजनीतिक दल उम्मीदवारों के चयन के समय गुणों के बजाय जाति एवं संप्रदाय जैसे तत्वों पर ध्यान देते है। उन प्रतिनिधित्व कानून की धारा 123 (3) (क) धर्म के नाम पर वोट मांगने वाले उम्मीदवार पर प्रतिबंध लगाता है। परन्तु वास्तव में उम्मीदवार न सिर्फ जाति एवं धर्म के नाम पर वोट मांगते है। बल्कि इस आधार पर राजनीतिक दलों का गठन भी हो चुके है। ऐसी परिस्थिति मे वोट एक सूत्र में बांधन वाला, समता स्थापित करने वाला हथियार न बनकर एक विनाशकारी शक्ति के रूप में उभरा है। यहां यह कहना यथेष्ट है कि जाति एवं संप्रदाय की भावनाओं को भड़काना प्रजातंत्र की भावना के विरूद्ध है।

सुधारों की आवश्यकता

पर्यवेक्षकों और लोकतंत्र में रूचि रखने वाले व्यक्तियों का यह दृढ़ विचार है कि लोकतंत्र को सशक्त करने के लिए चुनावी प्रक्रिया में लोगों की बढ़ती उदासीनता को रोकने तथा चुनाव को सार्थक बनाने के लिए चुनावों में सुधार की नितांत आवश्यकता है। वास्तव में प्रथम आम चुनाव के समय से ही चुनाव में सुधार की आवश्यकता वाद–विवाद का विषय रहा है। चुनाव आयोग की सभी रिपोर्टो मे सुधार के प्रस्ताव शामिल रहे है। कुछ सुधार लागू भी हो चुके हैं, परन्तु ये यथेष्ट नहीं है। यह अनुभव किया जा रहा है कि इसे प्रभावशाली बनाने के लिए सभी स्तरों पर सुधार की आवश्यकता है। अस्थायी या छोटे–छोटे सुधारों में इस समस्या का समाधान नहीं हो सकता।

चुनाव सुधार का इतिहास

प्रत्येक आम चुनाव के पश्चात् आयोग द्वारा जारी रिपोर्ट के माध्यम से चुनावी प्रक्रिया में सुधारों की आवश्यकता पर बल दिया जा रहा था। 1967 के चौथे आम चुनाव के बाद चुनाव व्यवस्था की अनेक कमियां उभर कर सामने आने लगी।

जहां एक और चुनावों के कारण मतदाताओं में परिक्वता आई है, प्रभावशाली

राजनीतिक दलों का उदय हुआ है, उम्मीदवारों एवं नागरिकों में अपने अधिकारों के प्रति सजगता आई है, सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था में उचित परिवर्तन आया है, वहीं राजनीतिज्ञों का एक नया वर्ग उभरा है जिनके कारण नैतिक मूल्यों तथा राजनीतिक संस्थाओं का हास हुआ है। ये तथ्य विचलित करने वाले है। इस पृष्ठभूमि में चुनावों में सुधार के विषय ने राष्ट्रीय कार्य सूची में महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है।

1970 में निर्वाचन आयोग ने विधि मंत्रालय को चुनाव सुधार से सम्बन्धित एक विधेयक का प्रस्ताव भेजा। उसके बाद केन्द्र सरकार ने जन प्रतिनिधित्व कानून 1950 एवं 1951 में संशोधन के लिए विधेयक तैयार किया।

इस लोक सभा में दिसंबर 1973 में पेश किया गया। जनवरी 1977 में लोक सभा भंग होने के साथ ही यह स्वंयमेव समाप्त हो गया। यह ध्यान देने योग्य है कि इस विधेयक में निर्वाचन आयोग द्वारा सुझाए गए महत्वपूर्ण सुधार प्रस्तावों को सम्मिलित नहीं किया गया था। नवम्बर 1983 में निर्वाचन आयोग के साथ राजनीतिक दलों के प्रतिनिधियों की बैठक हुई जिसमें कुछ मुद्दों पर आम सहमति बनी। इनमें से कुछ महत्वपूर्ण विषय इस प्रकार है।–

1. एक से अधिक चुनाव क्षेत्रों से चुनाव लड़के पर रोक।
2. चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों की न्यूनतम आयु सीमा को घटाना।
3. राजनीतिक दलों का अनिवार्य पंजीकरण तथा बही–खातों को नियमित रखना।
4. सुरक्षा राशि की बचत के लिए चुनाव में न्यूनतम मतों की संख्या में वृद्धि।
5. वर्तमान चुनावी व्यवस्था को बहुमतीय सूची व्यवस्था में परिवर्तित करना।
6. चुनाव खर्चो का सरकार द्वारा वहन किया जाना।
7. आरक्षित सीटों का चक्रीय परिवर्तन।
8. निर्वाचन आयोग द्वारा भ्रष्ट आचरण के आधार पर किसी भी व्यक्ति को चुनाव में उम्मीदवार बनने से रोक लगाने की शक्ति।
9. चुनाव पर्यवेक्षकों की सिफारिशों के आधार पर चुनाव आयोग द्वारा

चुनाव को रोकने की शक्ति।

10. वैधानिक आचार सहिता।
11. मुख्य निर्वाचन आयुक्त एवं अन्य निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति की प्रक्रिया का निर्धारण।

ये सारे प्रस्ताव कागजी बन कर रह गए। दिसंबर 1988 में निर्वाचन आयोग की सिफारिश पर मतदान केन्द्रों पर कब्जा करने वाले व्यक्ति को सजा देने के लिए कानून में एक महत्वपूर्ण संशोधन किया गया।

चुनाव आयोग को यह शक्ति प्रदान की गई कि निर्वाचन क्षेत्र में विशेष में यदि मतदान केन्द्रों पर कब्जा जैसी घटनाएं व्यापक रूप में घंटे, तो वह चुनाव पर रोक लगा दे। 1988 में मत देने की आयु 21 वर्ष से घटाकर 18 वर्ष कर दी गई।

1996 के सुधार

1989 में राष्ट्रीय मोर्चे की सरकार ने सुधार के लिए एक अन्य प्रयास किया। 1990 में इस विषय पर आम राय बनाने के लिए विधि एवं न्याय मंत्री दिनेश गोस्वामी की अध्यक्षता में एक सर्वदलीय समिति का गठन किया गया। मई 1990 में इस कमेटी ने लगभग आम राम से अपनी सिफारिशें पेश की। परन्तु राष्ट्रीय मोर्चे की सरकार गिर जाने के कारण इस विषय पर व्यावहारिक स्तर पर कुछ नहीं हुआ। उसके पश्चात् राजनीतिक दल एवं निर्वाचन आयोग इस बारे में अनेक संशोधन किए गए जिनमें से कुछ प्रमुख है।–

1. उम्मीदवारों की बहुतायत को रोकने के लिए सामान्य श्रेणी के संसदीय उम्मीदवारों के लिए सुरक्षित जमा राशि 500 से बढ़ाकर 10,000 तथा अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के उम्मीदवारों के लिए यह राशि 250 से बढ़ाकर 5,000 कर दी गई। इसी प्रकार राज्य विधान सभा के चुनाव के लिए इसे 250 से 5000 सामान्य श्रेणी के लिए तथा 125 से बढ़ाकर 2500 अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के उम्मीद्वारों के लिए कर दिया गया। इसके साथ ही यह भी प्रावधान किया गया कि संसदीय या विधान सभा के उम्मीदवार के नामांकन पत्र पर यदि वह उम्मीदवार किसी राष्ट्र या राज्य स्तरीय दल का नहीं है।, तो उसे क्षेत्र के कम से कम दस मतदाताओं को समर्थन हो। नामांकन करने के दिन में मतदान होने के दिन तक के बीच की अवधि को 20 दिनों से घटाकर 14 दिन कर दिया गया।

2. राष्ट्रीय ध्वज, राष्ट्रगान या भारत के संविधान के अपमान के दोषी व्यक्ति को सजा होने की तिथि से 6 वर्षों तक चुनाव लड़ने पर रोक।

3. पहले चुनाव क्षेत्र में किसी उम्मीदवार की मृत्यु हो जाने पर चुनाव रोक दिया जाता था, परन्तु अब चुनाव नहीं रोका जाता। यदि उम्मीदवार किसी राष्ट्रीय या राज्य स्तरीय दल का है तो उस दल को दूसरे उम्मीदवार को खड़ा करने का विकल्प दिया जाता है।

4. मतदान केन्द्र पर या उसके समीप किसी भी तरह का हथियार ले जाने पर दो साल तक की सजा या जुर्माना या केन्द्र और जुर्माना दोनों हो सकते है।

5. एक उम्मीदवार दो या दो से अधिक संसदीय या विधान सभा क्षेत्र से चुनाव नहीं लड़ सकता।

सदर्भ सूची

आरोन , एच. 1967."सामाजिक सुरक्षाः अंतर्राष्ट्रीय तुलनाएँ।"आय रखरखाव के अर्थशास्त्र में अध्ययन, संपादक एकस्टीन , ओ .वाशिंगटन, डीसीः ब्रूकिंग्स इंस्टीट्यूशन।गूगल स्कॉलर

एबॉट , एंड्रयू .2004.तरीकेः सामाजिक विज्ञान के लिए ह्यूरिस्टिक्स.न्यूयॉर्कः डब्ल्यूडब्ल्यू नॉर्टन.गूगल स्कॉलर

अब्देलल , रावी ।2001.विश्व अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय उद्देश्यः तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में सोवियत–पश्चात के राज्य।इथाका, एनवाईः कॉर्नेल यूनिवर्सिटी प्रेस।गूगल स्कॉलर

अब्देलल , रावी ।2003."उद्देश्य और अभावः हैब्सबर्ग के बाद के पूर्वी यूरोप और सोवियत के बाद के यूरेशिया में राष्ट्र और अर्थव्यवस्था।"पूर्वी यूरोपीय राजनीति और समाज 16(3)ः 898दृ933।क्रॉसरेफ़गूगल स्कॉलर

एबेल , पीटर .1987.कासिंटैक्सः तुलनात्मक कथाओं का सिद्धांत और विधि. ऑक्सफोर्डः क्लेरेंडन प्रेस.गूगल स्कॉलर

ऐसमोग्लू , डेरॉन ।2005."संविधान, राजनीति और अर्थशास्त्रः पर्सन और टेबेलिनी के संविधान के आर्थिक प्रभावों पर एक समीक्षा निबंध।"जर्नल ऑफ इकोनॉमिक लिटरेचर 43ः 1025दृ1048।क्रॉसरेफ़गूगल स्कॉलर

ऐसमोग्लू , डेरॉन , जॉनसन , साइमन और रॉबिन्सन , जेम्स ए .2001. "तुलनात्मक विकास की औपनिवेशिक उत्पत्तिः एक अनुभवजन्य जांच। "अमेरिकन इकोनॉमिक रिव्यू 91(5)ः 1369दृ1401.क्रॉसरेफ़गूगल स्कॉलर

ऐसमोग्लू , डेरॉन , जॉनसन , साइमन और रॉबिन्सन , जेम्स ए .2002. "रिवर्सल ऑफ फॉर्च्यूनः जियोग्राफी एंड इंस्टिट्यूशंस इन द मेकिंग ऑफ द मॉडर्न

वर्ल्ड इनकम डिस्ट्रीब्यूशन."क्वार्टरली जर्नल ऑफ इकोनॉमिक्स 117ः 1231दृ 1294.क्रॉसरेफगूगल स्कॉलर

ऐसमोग्लू , डेरॉन , जॉनसन , साइमन और रॉबिन्सन , जेम्स ए .2005. "आर्थिक इतिहास और राजनीति विज्ञानः प्रश्न, विधियाँ और उत्तर स्पष्ट करना।"द पॉलिटिकल इकोनॉमिस्ट 12(3)ः 4, 7, 11, 13.गूगल स्कॉलर

ऐसमोग्लू , डेरॉन और रॉबिन्सन , जेम्स ए .2006.तानाशाही और लोकतंत्र की आर्थिक उत्पत्ति.कैम्ब्रिजयूनिवर्सिटीप्रेस.गूगल स्कॉलर

एचेन , क्रिस्टोफर एच. 2002ए. "पैरेंटल सोशलाइजेशन एंड रेशनल पार्टी आइडेंटिफिकेशन।"पॉलिटिकल बिहेवियर 24ः 151दृ170.क्रॉसरेफ़गूगल स्कॉलर

एचेन , क्रिस्टोफर एच. 2002बी. "एक नई राजनीतिक पद्धति की ओरः माइक्रोफाउंडेशन और एआरटी।"राजनीति विज्ञान की वार्षिक समीक्षा 5ः 423–450. क्रॉसरेफ़गूगल स्कॉलर

एचेन , क्रिस्टोफर एच. , और शिवली , डब्ल्यू. फिलिप्स .1995.क्रॉस–लेवल इंफरेंस.शिकागोशिकागोप्रेस.गूगल स्कॉलर

एडम्स , जूलिया , क्लेमेंस , एलिजाबेथ एस. , और ऑरलॉफ़ , एन शोला ।2005.रीमेकिंग मॉडर्निटीः पॉलिटिक्स, हिस्ट्री, एंड सोशियोलॉजी।डरहम, एनसीः ड्यूक यूनिवर्सिटी प्रेस।क्रॉसरेफ़गूगल स्कॉलर

एडकॉक , रॉबर्ट , बेविर , मार्क , और स्टिमसन , शैनन सी. , संपादक।2007. आधुनिकराजनीति विज्ञानः 1880 के बाद से एंग्लो–अमेरिकन आदान–प्रदान।प्रिंसटन, एनजेः प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस।

एडलर , इमानुएल ।1997."मध्य भूमि पर कब्ज़ा करनाः विश्व राजनीति में रचनात्मकता।"यूरोपीय जर्नल ऑफ़ इंटरनेशनल रिलेशंस 3(3)ः 319दृ 363।क्रॉसरेफ़गूगल स्कॉलर

एडलर , इमैनुएल .2002."रचनात्मकता और अंतर्राष्ट्रीय संबंध।"हैंडबुक ऑफ़ इंटरनेशनल रिलेशंस, संपादक कार्लसनस , वाल्टर , रिस्से , थॉमस और सीमन्स , बेथ ए .लंदनः सेज पब्लिकेशन्स.गूगल स्कॉलर